पुस्तकालय सामग्री और कला-वस्तुओं का परिरक्षण

लोकोपयोगी विज्ञान

पुस्तकालय सामग्री और कला-वस्तुओं का परिरक्षण

ओ. पी. अग्रवाल

अनुवाद

राजेन्द्र प्रसाद तिवारी

एकः सूते सकलम्

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

रेखाचित्र : ममता मिश्र
फोटोग्राफ : राम सागर प्रसाद

ISBN 81-237-2545-0

पहला संस्करण : 1999 *(शक 1920)*

Preservation of Art Objects and Library Materials *(Hindi)*

रु. 40.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क,
नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

विषय-वस्तु

प्राक्कथन

संग्रहालय तथा कला-संग्रहकर्ता, पाषाण, धातु, मिट्टी, कागज, वस्त्र, काष्ठ आदि विभिन्न प्रकार की सामग्री से निर्मित कलात्मक वस्तुओं का संग्रह करते हैं। संग्रहालयाध्यक्ष को अपने दायित्वों के अंतर्गत संग्रहालय में सुरक्षित वस्तुओं का पंजीकरण, सूचीकरण, फोटोग्राफी, प्रदर्शन, अतिरिक्त सामग्रियों का संचय क्षेत्र में सुरक्षित रखरखाव, वस्तुओं और ग्रंथों का अध्ययन, लेखों अथवा सूची-पत्रों का प्रकाशन करना पड़ता है। यद्यपि निजी संग्रहकर्ता को इतना कुछ करने की आवश्यकता नहीं होती है। अतः संग्रहालयाध्यक्ष का प्रमुख कर्तव्य विभिन्न प्रकार की सामग्री का परिरक्षण करना होता है। इन्हीं कार्यों को पुस्तकालयाध्यक्ष और कला-संग्राहक को भी करना पड़ता है।

कला-सामग्री अपने निर्माण के समय से ही ह्रास की विभिन्न प्रक्रियाओं के दौर से गुजरती रहती है। परिरक्षण के लिए आने से पहले वस्त्र काफी घिस चुके होते हैं और अनेक बार उन्हें धो लिया जाता है, जिससे वस्त्र की मजबूती में काफी कमी आ चुकी होती है। मंदिरों में काफी लंबे समय से रखी गई मूर्तियों पर लगातार श्रद्धालुओं द्वारा जल, दूध तथा अन्य तरल सामग्रियों के चढ़ाने से मूर्तियों को कुछ हानि पहुंच सकती है। हो सकता है कि कोई लकड़ी की शिल्प-वस्तुओं का प्रयोग अपने निवास को अलंकृत करने अथवा रोजमर्रा के प्रयोग के लिए करता रहा हो लेकिन बाद में उचित देखभाल के अभाव में उन्हें भी क्षति पहुंच सकती है।

किसी वस्तु के संग्रह में शामिल हो जाने पर भी, टूट-फूट के अलावा उस सामग्री को जलवायु, प्रकाश, कीट और कवक के प्रभाव से, ह्रास के अनेक दौरों से गुजरना पड़ता है। अतः कला-संग्राहक, संग्रहालयाध्यक्ष तथा पुस्तकालयाध्यक्ष को उन कारणों का ज्ञान होना चाहिए जिनसे अलग-अलग सामग्रियों को हानि पहुंचती है और किस प्रकार वे कारक उन्हें प्रभावित करते हैं।

इस पुस्तक की रचना का उद्देश्य, सरल भाषा में, परिरक्षण के सिद्धांतों

से संबंधित सभी व्यक्तियों को परिचित कराना है जिससे वे अपनी सांस्कृतिक विरासत का सही तरीके से परिरक्षण कर सकें। इस प्रकार की पुस्तक की आवश्यकता काफी लंबे समय से अनुभव की जा रही थी। इसमें दिए गए कुछ विचार मेरी पुस्तक 'केयर एंड प्रिजरवेशन आफ म्यूजियम आब्जेक्ट्स' में पहली बार प्रस्तुत किए गये। तब से आज तक, इस क्षेत्र में बहुत तेजी से विकास हुआ है, जिसका उल्लेख करने का प्रयास मैंने अपनी इस नवीनतम कृति में किया है। इसके अलावा यह पुस्तक केवल संग्रहालयाध्यक्षों को संबोधित न होकर आम पाठक के उपयोग के लिए भी है।

मैं नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया को इसके लिए धन्यवाद देना चाहता हूं कि उन्होंने इस विषय का लोकोपयोगी विज्ञान पुस्तकमाला के अंतर्गत चयन किया। मैं विशेषकर सुश्री मंजु गुप्ता का आभारी हूं जिन्होंने इस पुस्तक की संपूर्ण पांडुलिपि का वाचन ही नहीं किया, बल्कि अत्यंत परिश्रम से इसका संपादन भी किया।

मैं अपनी पत्नी उषा अग्रवाल, जो इन्टेक भारतीय संरक्षण संस्थान में कार्यक्रम निदेशक हैं, का समय-समय पर दिये गये बहुमूल्य सुझावों के लिए आभारी हूं।

पुस्तक में प्रकाशित सभी रेखा-चित्र सुश्री ममता मिश्र द्वारा बनाये गये हैं, जिनका मैं हृदय से आभारी हूं। मैं श्री राम सागर प्रसाद के सहयोग के प्रति आभार प्रदर्शित करता हूं, जिन्होंने इस पुस्तक के लिए छायाचित्रों की व्यवस्था की है। मैं अपनी सचिव सुश्री राधम्मा को धन्यवाद देते हुए अत्यंत हर्ष का अनुभव कर रहा हूं, जिन्होंने इस पांडुलिपि को अनेक बार टंकित और पुनर्टंकित किया।

लखनऊ
सितंबर 1992

ओ. पी. अग्रवाल

भूमिका

दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशिया की प्राचीन कला-परंपरा, शिल्प और विभिन्न सामग्रियों पर लेखन का हजारों वर्ष प्राचीन इतिहास है। प्रत्येक युग में नवीन प्रकार के कलात्मक कार्यकलापों का अभ्युदय और उनका निरंतर विकास होता रहा है। इसमें संदेह नहीं कि पाषाण मूर्तियों, धातु मूर्तियों, काष्ठ वस्तुओं, गलीचों, पांडुलिपियों, पुस्तकों, लघु-चित्रों, तैल-चित्रों, अन्य अलंकरण की वस्तुओं, कांच, सिरेमिक्स तथा अन्य सामग्रियों र. निर्मित वस्तुओं के रूप में हमें सांस्कृतिक विरासत की समृद्ध परंपरा प्राप्त हुई है। अनेक धार्मिक और उपासना-स्थलों ने प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से कलात्मक-सृजन को प्रोत्साहित किया। आज हमें जो अनेक मूर्तियां, प्रतिमाएं और चित्र प्राप्त होते हैं वे मानव की धार्मिक और आनुष्ठानिक परंपराओं की देन हैं। ऐसा कोई घर नहीं होगा जिसमें त्योहारों के अवसर पर मूर्ति का निर्माण न किया जाता हो अथवा कम से कम एक मूर्ति न खरीदी जाती हो अथवा आराधना के लिए रंगीन आकृतिपरक चित्रों को न बनाया जाता हो। विभिन्न जनजातियों और संप्रदायों की जीवन-शैली में क्षेत्रीय विविधताओं के दर्शन होते हैं जिसके फलस्वरूप उनकी कला और शिल्प सामग्रियां प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं।

विगत काल की इन कलात्मक रचनाओं को संग्रहालयों, पुस्तकालयों, अभिलेखागारों और यहां तक कि निजी संग्रहों में रखा जाता है। केवल भारत में ही 400 से अधिक संग्रहालय हैं जिनमें पुरातात्विक, नृजातिसंबंधी, ऐतिहासिक और विभिन्न प्रकार की शिल्प-सामग्रियों को संग्रहित किया जाता है। लोगों में पारंपरिक मूल्यों और सांस्कृतिक बोध की वृद्धि होने से संग्रहालयों और पुस्तकालयों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। इनमें से पुस्तकालयों में केवल पुस्तकें ही नहीं संग्रहित की जा रही हैं वरन् दुर्लभ पांडुलिपियों, चित्रों, मूर्तियों और विभिन्न प्रकार की कला-सामग्रियों को भी संग्रहित किया जा रहा है। कला- पारखियों और संग्राहकों ने भी अपने-अपने निजी संग्रह बना रखे हैं।

इन कला-कृतियों का अपना महत्व है क्योंकि ये सभ्यता और इतिहास के प्रत्येक काल के संदेशों को उद्घाटित करती हैं। इनकी उपादेयता इनके सौंदर्य और आकर्षण पर ही निर्भर नहीं करती, वरन् मानव-ज्ञान के विस्तार में इनकी भूमिका अद्वितीय रही है। प्राचीन काल में जनसाधारण द्वारा, दैनिक जीवन के प्रयोग में लाई जाने वाली वस्तुएं जैसे बर्तन, उपकरण, चित्र तथा अलंकरण सामग्रियां, मानव-विकास के लिए अध्ययन सामग्री प्रस्तुत करती हैं। लोककला, मानव जाति द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली वस्तुएं, जनजातीय वस्तुएं—मानव इतिहास के दस्तावेज आदि—संग्रहणीय सामग्रियां हैं। समकालीन कलात्मक वस्तुएं और कुछ समय पूर्व की वस्तुओं के नमूने हमें मानव-विकास के संबंध में कुछ न कुछ ज्ञान अवश्य प्रदान करते हैं।

अनेक कालों से चले आ रहे इन बहुमूल्य साक्ष्यों के परिरक्षकों का यह परम दायित्व है कि इन सामग्रियों की ठीक से देखभाल और परिरक्षण किया जाए। संग्रहालय के अध्यक्ष का कार्य वस्तुओं को सुरक्षित रीति से रखना, उन्हें प्रदर्शित करना और उन्हें प्रलेखित कर उनकी व्याख्या करना है। पुस्तकालय में, पुस्तकालयाध्यक्ष, पुस्तकों को प्राप्त कर, उनकी सूची बनाकर, पाठकों के सम्मुख अध्ययन के लिए प्रस्तुत करता है और उनके समुचित रखरखाव की व्यवस्था करता है। वे वस्तुएं जो निजी अभिरक्षा में रखी होती हैं, यद्यपि व्यक्तिगत संपत्ति की श्रेणी में आती हैं पर मानव-मात्र के विकास के प्रतीक और राष्ट्रीय परिसंपत्ति के रूप में इनका महत्व कम नहीं है। अतः इनका संरक्षण अवश्य किया जाना चाहिए।

प्रायः कला-सामग्रियों को परिरक्षित करने तथा उन्हें विघटन से बचाने की इच्छा के बावजूद इस संबंध में आवश्यक जानकारी जनसाधारण को नहीं है। लोगों को इसका भी ज्ञान नहीं है कि वस्तुओं की परिरक्षा संबंधी सामान्य सावधानी रखने से ही बहुत लाभ प्राप्त किया जा सकते हैं। अतः प्रस्तुत पुस्तक के लेखन के समय मेरा उद्देश्य पुरातात्विक, मानवजाति संबंधी और अन्य प्रयुक्त सामग्रियों के विषय में संक्षिप्त, सैद्धांतिक और तथ्यात्मक जानकारी प्रदान करना है ताकि इन सामग्रियों को विघटन और क्षति पहुंचाने वाले प्रमुख कारकों की पहचान की जा सके और फलतः इन्हें क्षतिग्रस्त होने से बचाया जा सके। यह विशेष रूप से आवश्यक है कि उन संभावित खतरों पर ध्यान दिया जाये जो कला-वस्तुओं, पुस्तकों और पांडुलिपियों के रखरखाव के समय उत्पन्न होते हैं। उन खतरों से कैसे निपटा जाए, साथ ही इसे भी जान लेना चाहिए। वे दिन अब गये जब पांडुलिपियों और कलात्मक सामग्रियों को शाही तोशाखानों में सुरक्षित रखा जाता

था और उन्हें केवल समारोहों के अवसरों पर ही बाहर निकाला जाता था।

कला सामग्रियां, पुरावस्तुएं और मानवजाति संबंधी सामग्रियां, प्राकृतिक काल-प्रभाव और अपक्षय से प्रभावित होती हैं। मानवजन्य कारकों के अलावा इन समस्त सामग्रियों को अनेक प्रकार के प्राकृतिक ह्रास के दौर से लगातार गुजरना पड़ता है। पाषाण की सुंदर मूर्तियां लवण की उपस्थिति से टूट-फूट जाती हैं। वायुमंडलीय आर्द्रता के उतार-चढ़ाव के कारण काष्ठ की कलात्मक मूर्तियां दरारें पड़ने से क्षतिग्रस्त हो जाती हैं। प्रकाश के प्रभाव से रंगीन वस्त्र बदरंग और कमजोर होने लगते हैं। दीमक की तरह के कीट बहुमूल्य कला-सामग्रियों को एक ही रात्रि में चूर्ण में परिवर्तित कर देते हैं। समस्त प्रकार के कागज की सामग्रियों, वस्त्रों, चित्रों इत्यादि को कवक क्षतिग्रस्त कर देते हैं। बहुमूल्य कला-सामग्रियों की गलत और लापरवाही से की गयी पैकिंग से उन्हें क्षति पहुंचती है। ऐसे मामलों में प्रश्न यह उठता है कि इस प्रकार के विनाश से बचने के लिए क्या किया जाए ?

हममें से अनेक लोग यह सोचते हैं कि जैसे ही कोई वस्तु या पांडुलिपि अथवा दस्तावेज, संग्रहालय, पुस्तकालय, अभिलेखागार या संग्रह में रख दिया जाता है, तो वह स्वतः ही परिरक्षित हो जाता है और उसे परिरक्षित करने का दायित्व वहीं पर समाप्त हो जाता है। पर वास्तव में ऐसा नहीं होता। इसके उपरांत ऐसे कदम उठाने पड़ते हैं कि उनके विघटन की प्रक्रिया पर रोक लग जाए। इन्टेक भारतीय संरक्षण संस्थान, लखनऊ ने इस महत्वपूर्ण तथ्य को उजागर किया है कि प्रायः अधिकतर सामग्रियां, वातानुकूलन या संरक्षण की कमी के फलस्वरूप विघटित नहीं होतीं, बल्कि मुख्य रूप से लापरवाही, रखरखाव की कमी और अनुपयुक्त भंडारण के कारण होती हैं। वास्तव में, सांस्कृतिक संपदा के संरक्षण के लिए निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है : (1) वस्तुओं में पहले से व्याप्त दोषों का इलाज अथवा उपचार करना, और (2) भावी क्षति से उसकी रक्षा और उनके रखरखाव की समुचित व्यवस्था करना।

वस्तु में पहले से विद्यमान दोषों के उपचार और उसमें निहित क्षति के संरक्षण के लिए एक उपयुक्त संरक्षण प्रयोगशाला का होना आवश्यक है, जिससे वस्तु की जांच, उसके रोगों का निदान करने के उपरांत उसकी विस्तृत रिपोर्ट बनाकर उसका उपचार किया जा सके। अनेक प्रकार के उपस्करों से उसका परीक्षण करने के उपरांत, प्रयोगशाला में यह ज्ञात हो जाता है कि वस्तु को कितनी क्षति पहुंच चुकी है और किस प्रकार से उसे उसकी मूल स्थिति में लाना संभव है। पर हमें यह जान लेना चाहिए कि एक सामान्य संरक्षण प्रयोगशाला में विश्लेषण के लिए अत्याधुनिक उपस्करों जैसे एटोमिक एब्सोर्पशन स्पेक्ट्रोफोटोमीटर या

एक्स-रे फ्लोरेसैंस स्पेक्ट्रोमीटर की आवश्यकता होती है। संरक्षण प्रयोगशाला वस्तुओं के उपचार के लिए निर्मित की जाती है और इसमें जिन उपकरणों का प्रयोग किया जाता है, यद्यपि वे सामान्य प्रकार के होते हैं, पर उनके प्रयोग के लिए अत्यंत उच्च स्तरीय तकनीकी कौशल की आवश्यकता होती है।

संरक्षण-उपचार या अनुसंधान के विपरीत, वस्तुओं को आगामी क्षति से बचाने के लिए तथा अच्छी स्थिति में रखने के लिए, कुछ सावधानियां आवश्यक हैं। वस्तुओं के संग्रह की सुविधाओं के अलावा इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि कीट (कीड़े-मकोड़े) सामग्री को क्षति न पहुंचाने पाएं। परिरक्षक को वस्तुओं के गुणधर्मों, उनके रासायनिक आचरण और उन पर पर्यावरण के प्रभाव तथा क्षय के अन्य कारणों का ज्ञान होना चाहिए।

वस्तुओं की स्वच्छता और मरम्मत के छोटे-मोटे कार्य परिरक्षक स्वयं ही कर सकता है, यदि उसे इसका आभास हो जाए कि वस्तुओं को किस प्रकार का खतरा पहुंच सकता है। उसे इसका ज्ञान होना चाहिए कि उनके ह्रास के कौन से माध्यम अथवा कारक हैं और वे वस्तुओं को किस प्रकार प्रभावित करते हैं तथा किन प्रविधियों को अपना कर उनके ह्रास को नियंत्रित किया जा सकता है। उसे संकट के संकेतों का ज्ञान होना चाहिए, साथ ही उसे यह भी ज्ञात होना चाहिए कि कला सामग्रियों का कैसे खयाल रखा जाये तथा किस प्रकार भंडार में सुरक्षित रीति से रखा जाए। उसमें आवश्यकतानुसार कला-सामग्रियों के संबंध में कीट और कवकनाशियों के प्रयोग की भी योग्यता होनी चाहिए।

परिरक्षक को सामान्य उपचार की उन विधियों का ज्ञान होना चाहिए जिसे प्राथमिक चिकित्सा कहते हैं। किसी संग्रह या पुस्तकालय के प्रभारी में यह जानने की क्षमता होनी चाहिए कि कब विशेषज्ञ की राय अथवा वस्तुओं के उपचार की आवश्यकता है।

संरक्षण और पुनरुद्धार में अंतर

अब हमें 'संरक्षण' और 'पुनरुद्धार' शब्दों के अंतर को जान लेना चाहिए। आजकल 'पुनरुद्धार' शब्द से अधिक 'संरक्षण' शब्द का प्रयोग किया जाता है, क्योंकि इस शब्द का अर्थ-विस्तार अधिक है। पुनरुद्धार का तात्पर्य किसी वस्तु को मरम्मत द्वारा, जहां तक हो सके उसके मूल भौतिक और मूल सौंदर्य की अवस्था में रखने की क्रिया से है। यह क्रिया वस्तु-ह्रास को ठीक करती है। इसका अपना एक सीमित उद्देश्य होता है, जिसका आरंभ और अंत होता है। दूसरी ओर संरक्षण का दायरा काफी बड़ा है। इसकी परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की गयी है—किसी

प्रकार की सांस्कृतिक परिसंपत्ति की सामग्रियों को एक स्थान में सुरक्षित रखने, उनका रखरखाव अथवा उपचार करने तथा उनकी प्रकृति तथा गुणधर्मों का निर्धारण करने, उनके ह्रास को रोकने से संबंधित क्रियाकलाप; तथा अन्य प्रकार के कार्य जो इन परिसंपत्तियों की वर्तमान स्थिति में सुधार लाएं (अंतर्राष्ट्रीय संरक्षण संस्थान, लंदन की संविधियां)। संरक्षण एक अवधारणा है, जिसमें परिरक्षण और पुनरुद्धार दोनों ही सम्मिलित होते हैं। ऊपरी तौर से परिरक्षण के अंतर्गत वस्तु को भौतिक और रासायनिक दृष्टि से दुरुस्त स्थिति में रखने का प्रयास किया जाता है। अतः यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो कभी समाप्त नहीं होती।

परिरक्षण की रीतियों पर चर्चा करने से पूर्व हमें सर्वप्रथम यह जानना चाहिए कि विघटन क्या है, और वे कौन-कौन से तत्व हैं जो वस्तुओं को नष्ट करते हैं। विघटन या ह्रास वस्तु में परिवर्तन होने की स्थिति है, जो वस्तु और विनाश के कारकों के पारस्परिक द्वंद्व से होता है। अतः परिरक्षण के लिए जिन वस्तुओं से ये सामग्रियां निर्मित हुई हैं, उनकी रासायनिक और भौतिक प्रकृति का अध्ययन अवश्यमेव किया जाना चाहिए और उन विशिष्ट कारणों को भी जानने का प्रयास करना चाहिए जो उन वस्तुओं के ह्रास के लिए उत्तरदायी होते हैं।

वस्तुओं की प्रकृति

समस्त वस्तुओं को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है : (1) अकार्बनिक और (2) कार्बनिक। पाषाण, धातुएं और सिरेमिक्स आदि अकार्बनिक पदार्थ हैं, जबकि काष्ठ, कागज, वस्त्र, चर्म, हाथीदांत, अस्थि, पंख और अन्य सामग्रियां जो जीवित वस्तुओं और वनस्पतियों से प्राप्त की जाती हैं, उन्हें कार्बनिक पदार्थ कहते हैं। कार्बनिक सामग्रियों का अकार्बनिक सामग्रियों की तुलना में अधिक प्राकृतिक क्षय होता है। अतः कार्बनिक वस्तुओं के परिरक्षण के लिए अधिक सावधानी की आवश्यकता होती है। तथापि, इसका यह अर्थ नहीं है कि अकार्बनिक सामग्रियां पूर्णतया क्षय या विनाश के प्रति प्रतिरक्षित होती हैं। इनका भी ह्रास होता है, पर कार्बनिक सामग्रियों की तुलना में उसकी गति धीमी होती है।

अपघटन या ह्रास के कारक

ऐसे अनेक कारक होते हैं जिनका पदार्थों के ऊपर विनाशकारी प्रभाव पड़ता है। खुले वातावरण में सूर्य का प्रत्यक्ष प्रकाश तथा लगातार तेज गर्मी, आंधी-तूफान और खुले स्थान में वस्तुओं के पड़े रहने से उन पर अत्यंत विनाशकारी प्रभाव पड़ता है। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि वस्तुएं भवनों के अंदर सुरक्षित और

संरक्षित रहती हैं। ऐसे अनेक कारक होते हैं जो रात-दिन लगातार वस्तुओं के संपर्क में आकर, धीरे-धीरे भवनों के अंदर भी उन्हें विघटन की प्रक्रिया के घेरे में ले आते हैं। वस्तुओं के विघटन के कुछ कारण प्राकृतिक हैं, और कुछ कारणों को मानवजन्य माना जा सकता है। जलवायुगत परिस्थितियां और वातावरण, प्रकाश, सूक्ष्म जीव जैसे कवक, कीट तथा वातावरण में प्रदूषकों की उपस्थिति—ये समस्त प्राकृतिक कारण हैं जो वस्तुओं को विघटन की ओर ले जाने में सहायक होते हैं।

इन वस्तुओं को मानव भी अनेक प्रकार से हानि पहुंचाता है। वस्तुओं को त्रुटिपूर्ण ढंग से उठाने और पकड़ने, उनकी उपेक्षा करने, भंडारघरों की सामग्रियों को गलत तरीके से रखने, दुर्घटनाओं या अग्निकांडों से प्रायः वस्तुओं को अपार नुकसान पहुंचता है। ऐसे भी दृष्टांत मिलते हैं जब पाषाण मूर्तियां एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते समय टूट गयीं, क्योंकि पैकरों ने मूर्ति के चारों और लचीली पैंकिंग सामग्री का काफी मात्रा में प्रयोग नहीं किया था। तह करके रखे गए वस्त्र प्रायः तहों से कटने-फटने लगते हैं।

इन सबके अलावा वस्तुओं में भी दोष होता है, जिसके फलस्वरूप उनका लगातार ह्रास होता रहता है। उदाहरणार्थ पत्थर में लवण और कागज में अम्ल की उपस्थिति से इनका ह्रास शीघ्र होने लगता है।

प्रस्तुत पुस्तक को दो भागों में विभक्त किया गया है जिससे विषय को सरलता से समझा जा सके। हम जब तक कला सामग्रियों को हानि पहुंचाने वाले कारकों तथा जिस सामग्री से वह वस्तु बनाई गयी है, उसकी प्रकृति को पूर्णतया नहीं जान लेंगे, तब तक हम उन वस्तुओं के संरक्षण के लिए उचित कदम नहीं उठा सकते।

भाग-1



1

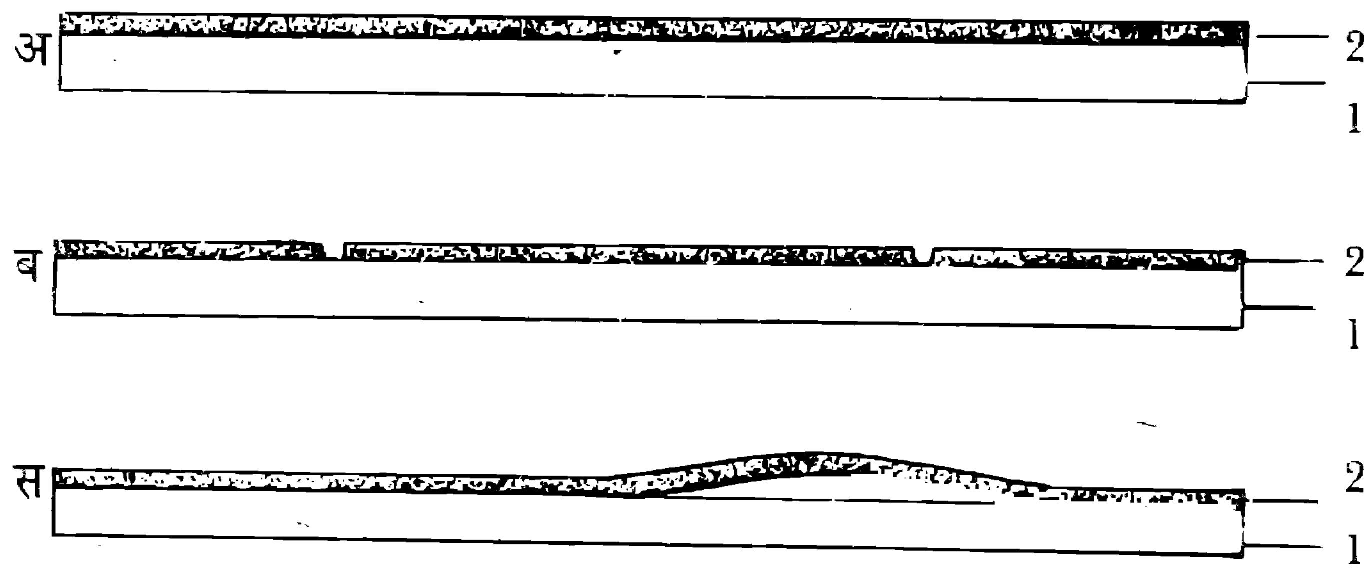
जलवायु एवं वातावरण

वैज्ञानिक अध्ययनों से यह ज्ञात होता है कि जिन स्थानों में कला-वस्तुएं रखी रहती हैं, वहां की जलवायुगत परिस्थितियों का उनके परिरक्षण पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। समस्त कला-वस्तुओं को जलवायु के दो प्रमुख घटक, आर्द्रता और तापमान, प्रभावित करते हैं।

जल, तरल और वाष्प, दोनों रूपों में ह्रास की रासायनिक प्रक्रियाओं को बढ़ावा देता है। उदाहरणार्थ पाषाण और धातुएं जब जल के संपर्क में आती हैं तब उनका क्षय अत्यंत तीव्रता से होने लगता है। इसके विपरीत शुष्क परिस्थितियों में ह्रास की गति धीमी पड़ जाती है। इसके अतिरिक्त वस्तुओं के भौतिक और संरचनात्मक गुणधर्मों पर जल का गहरा प्रभाव पड़ता है, विशेषकर जैविक पदार्थों पर, जैसे काष्ठ, कागज, चमड़ा इत्यादि। उदाहरणस्वरूप आर्द्र वातावरण में कागज शिथिल पड़ जाता है और उसका कुरकुरापन समाप्त हो जाता है। इसके विपरीत शुष्क वायुमंडलीय परिस्थितियों में ताड़पत्र भुरभुरे और कमजोर पड़ जाते हैं। अधिक मात्रा में नमी रहने से कवक सदृश सूक्ष्मजीवों के उत्पन्न होने की परिस्थितियों को बल मिल मिलता है। जिन वस्तुओं की रेशेदार या कोशिकीय संरचना होती है, उन सामग्रियों जैसे कागज, चर्मपत्र, हाथीदांत, अस्थि और इसी प्रकार के जैव-पदार्थों से निर्मित सामग्रियों के विमितीय स्थायित्व पर नमी का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। ये समस्त वस्तुएं अपनी प्रकृति के अनुरूप आर्द्रताग्राही होती हैं और वातावरण में नमी की वृद्धि से फूलने लगती हैं और नमी की मात्रा कम हो जाने पर अपने आप सिकुड़ जाती हैं।

वायुमंडल में नमी के बढ़ने और घटने से काष्ठ की वस्तुएं प्रभावित होती

हैं। वायुमंडल की आपेक्षिक आर्द्रता में जब निरंतर परिवर्तन होता रहता है तब काष्ठ की वस्तुओं का रूप सिकुड़कर बिगड़ने लगता है, अथवा उसमें दरारें भी पड़ने लगती हैं। बहुत कम या बहुत अधिक आर्द्र परिस्थितियों के फलस्वरूप काष्ठ पर बहुत अधिक तनाव पड़ता है जिसके कारण उसके आकार में भी बदलाव आने लगता है। अत्यंत जटिल संरचनाओं जैसे काष्ठ या कागज पर निर्मित चित्रों में तो समस्या और भी गंभीर हो जाती है। आपेक्षिक आर्द्रता की वृद्धि से काष्ठ या कागज के आकार में तो थोड़ी-सी वृद्धि होती है पर इनके धरातल में लगाए गए रंग में किसी भी प्रकार का विस्तार नहीं होता। इसके परिणामस्वरूप रंग में दरारें पड़ जाती हैं और रंग फटने लगता है (चित्र-1)



चित्र I अ—चित्र का अनुप्रस्थ-परिच्छेदन : '1' आधार कागज, लकड़ी या बोर्ड, '2' रंग। ब—आर्द्र वातावरण में कागज या काष्ठ के आधार में वृद्धि होने लगती है जिसके कारण रंग में दरारें पड़ सकती हैं। स—शुष्क वातावरण में आधार भाग सिकुड़ने लगता है और आधार तथा रंग के बीच में दरार या पार्थक्य दिखाई देने लगता है।

वे वस्तुएं जो किसी विशिष्ट आपेक्षिक आर्द्रता के वातावरण के अनुकूल ढल जाती हैं और यदि उन्हें अलग-अलग वातावरण में ले जाया जाता है, तो उन्हें क्षति होने की संभावना होती है। वस्तुओं को यदि मूल स्थान की तुलना में अधिक शुष्क स्थानों में स्थानांतरित किया जाता है, तो काष्ठ की वस्तुओं में दरारें पड़ने की संभावना रहती है। जलवायु यदि अधिक आर्द्र होती है तो वस्तुएं संवलित हो सकती हैं। अतः इसे सुनिश्चित कर लेना आवश्यक है कि गंतव्य स्थान को स्थानांतरित करने के लिए प्रयुक्त पेटियों के अंदर की आपेक्षिक आर्द्रता और तापमान, जहां वस्तुओं को ले जाया जा रहा है उसी के अनुरूप होना चाहिए।

आसंजकों पर भी जलवायु संबंधी परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। ईरान, अफगानिस्तान तथा भारत के कुछ भागों में ऊष्ण और शुष्क जलवायु के कारण, वस्तुएं भंगुर होने लगती हैं। जबकि, बर्मा, इंडोनेशिया, मलेशिया, श्रीलंका तथा थाइलैंड की ऊष्ण, आर्द्र जलवायु में वस्तुओं का विघटन होने लगता है।

जलवायु

किसी भी क्षेत्र की जलवायु अनेक कारणों जैसे धूप, वर्षा, आर्द्रता और तापमान पर आधारित होती है, जिसे उन्नतांश, अक्षांश, निकटवर्ती सागर और पर्वतीय क्षेत्रों की निकटता प्रभावित करती है।

जलवायु एक सामान्य शब्द है जो किसी विस्तृत निश्चित भू-भाग या क्षेत्र की परिस्थितियों को बताता है। यद्यपि, प्रत्येक क्षेत्र में जलवायुगत वैविध्य के दर्शन होते हैं और इसीलिए किसी सीमित क्षेत्र जैसे नगर, भवन अथवा प्रदर्शन-मंजूषा की जलवायु संबंधी परिस्थितियों के लिए 'सूक्ष्म जलवायु' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

किसी भी नगर की वायुमंडलीय परिस्थितियों को जलवायु के अलावा अनेक तत्व प्रभावित करते हैं। इन तत्वों में घरेलू और औद्योगिक भट्टियों की गर्मी, भवनों और खड़ंजों की ऊष्मा और विकिरणों को अवशोषित करने की क्षमता तथा वायुमंडलीय प्रदूषण आदि हैं। इसी प्रकार किसी भवन के भीतरी भाग के वातावरण को प्रभावित करने वाले तत्वों में भवन-विन्यास, उसके चारों ओर लगी वनस्पतियां, फौवारे या तालाब, भवन की दीवारों की मोटाई और उसके निर्माण में प्रयुक्त सामग्रियों का प्रमुख हाथ रहता है। इसी प्रकार भवन के प्रवेश-भाग, उसकी भीतरी वायु-संचार व्यवस्था के लिए निर्मित खिड़कियों आदि का बहुत अधिक प्रभाव उसके वातावरण पर पड़ता है। किसी वस्तु के परिरक्षण के लिए जलवायु से कहीं अधिक महत्वपूर्ण स्थान 'सूक्ष्म जलवायु' का होता है।

जलवायु के दो महत्वपूर्ण घटक तापमान और आर्द्रता हैं। किसी स्थान का तापमान उस स्थान विशेष में कितने डिग्री ऊष्मा व्याप्त है इसे बताता है, जबकि आर्द्रता वायु के एक यूनिट आयतन में उपस्थित नमी और इतनी ही वायु को उसी तापमान पर संतृप्त करने के लिए आवश्यक नमी के अनुपात को व्यक्त करती है। वायु उस समय पूर्णयता संतृप्त हो जाती है जब वह अपने अंदर वाष्प के रूप में और अधिक जल ग्रहण करने में पूर्णतया असमर्थ हो जाती है। इस अनुपात को प्रतिशत में अभिव्यक्त करने के लिए इसे 100 से गुणा किया जाता है।

यदि किसी स्थान की आपेक्षिक आर्द्रता 100 प्रतिशत है तो इसका तात्पर्य

है कि वायुमंडल आर्द्रता से पूर्णतया संतृप्त है और अब वह जल-वाष्प को अपने में अवशोषित करने में असमर्थ है। यदि ऐसे वायुमंडल में अधिक जल-वाष्प को संचारित किया जाए तो द्रवण की प्रक्रिया प्रारंभ होने लगती है। शून्य-प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता का तात्पर्य है कि वायुमंडल में बिलकुल आर्द्रता नहीं है। मध्यवर्ती प्रतिशत का अर्थ है कि माध्यमिक आर्द्रता के अंश उसमें विद्यमान हैं। उदाहरणार्थ 15 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता शुष्क परिस्थितियों का संकेत देती है, और 75 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता, आर्द्र स्थितियों की ओर इंगित करती है।

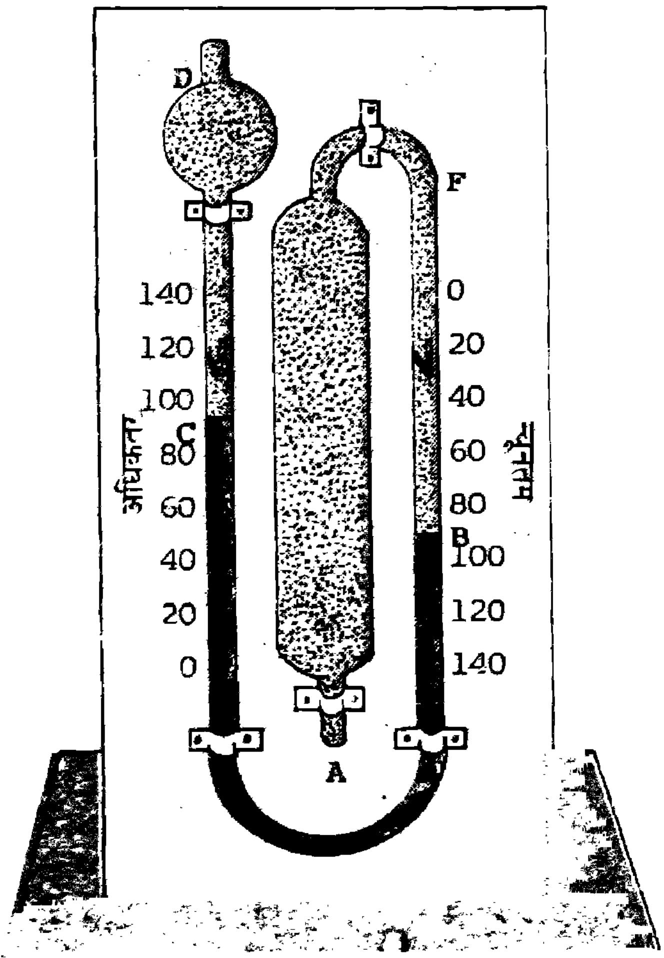
आपेक्षिक आर्द्रता और तापमान परस्पर निर्भर करते हैं। किसी परिवृत्त स्थान की आपेक्षिक आर्द्रता में जब वृद्धि होती है तब तापमान में गिरावट आती है और जब आपेक्षिक आर्द्रता में गिरावट आती है तो तापमान बढ़ जाता है। एयर-कंडिशनिंग के संबंध में यह तथ्य विशेष महत्व का है। ऊपर दिए गए तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि किसी स्थान की आपेक्षिक आर्द्रता को नियंत्रित करना है तो तापमान को अवश्य नियंत्रण में लाया जाए।

अभिलेखन उपकरण

किसी संग्रहालय की सूक्ष्म जलवायु की स्पष्ट जानकारी के लिए यह आवश्यक है कि उसके समस्त कक्षों, वीथिकाओं के तापमान और आपेक्षिक आर्द्रता का रिकार्ड रखा जाए। इन समस्त तथ्यों को मानीटर करने के लिए हमें अनेक उपकरणों की अवश्यकता होती है। किसी स्थान के तापमान के मापन के लिए सबसे सुविधाजनक साधन 'थर्मामीटर' है।

गर्मी के कारण थर्मामीटर के बल्ब का पारा फैल कर ट्यूब में चढ़ने लगता है और ऊष्मा की डिग्री को सेल्सियस या फारेनहाइट में दर्शाता है। चिकित्सा में, शरीर के तापमान को नापने के लिए ज्वरमापी थर्मामीटर का प्रयोग किया जाता है। कमरों के तापमान को नापने के लिए इसका प्रयोग नहीं होता।

साधारण थर्मामीटर पर्यवेक्षण की अवधि में तापमान को रिकार्ड करता है। यह दिन और रात की अवधि के अधिकतम और न्यूनतम तापमान को अंकित नहीं करता। इस कार्य के लिए एक विशेष प्रकार के थर्मामीटर का प्रयोग किया जाता है जिसे 'अधिकतम और न्यूनतम तापमानमापी थर्मामीटर' (चित्र 2) कहते हैं। इस थर्मामीटर में एक संकरी ट्यूब और दो भुजाएं बनी होती है जिनमें पारा भरा होता है। पारे के दोनों ओर लघु आकार के दो लौह-संकेतक बने होते हैं जो ट्यूब के अंदर स्थित होते हैं। इन संकेतकों की स्थिति का पठन 24 घंटे की अवधि के बाद किया जाता है जिसमें इस अवधि का अधिकतम और न्यूनतम



चित्र 2. अधिकतम और न्यूनतम तापमानमापी थर्मामीटर।

तापमान अंकित रहता है।

आपेक्षिक आर्द्रता को मापने की सबसे सुविधाजनक प्रविधि 'आर्द्र और शुष्क बल्ब थर्मामीटर' (प्लेट 1) है। इस उपकरण में दो थर्मामीटर, धातु या काष्ठ के आधार पर साथ-साथ जड़े होते हैं। उपकरण को वीथिका की दीवार पर टांग दिया जाता है। शुष्क बल्ब थर्मामीटर और आर्द्र बल्ब थर्मामीटर के पठन के अंतर को रिकार्ड करने के उपरांत गणना कर उसकी आपेक्षिक आर्द्रता निकाली जाती है। इसके लिए हाइग्रोमितीय सारणी का प्रयोग किया जाता है।

आर्द्र और शुष्क बल्ब थर्मामीटर में स्थिर वायु, आर्द्र बल्ब थर्मामीटर के चारों ओर एकत्रित हो जाती है, जिससे उसके सही पठन में व्यवधान उत्पन्न होता है। इस दोष का निराकरण 'विरलिंग हाइग्रोमीटर' (प्लेट 2) से हो जाता है। यह आर्द्र और शुष्क बल्ब थर्मामीटर का परिष्कृत रूप है और इसका प्रयोग बहुत ही सुविधाजनक है। इस उपकरण में भी दो थर्मामीटर होते हैं और इसके अतिरिक्त इसे घुमाने के लिए एक हत्था बना होता है। मापन के लिए इसे शरीर से काफी दूर रखा जाता है और कम से कम एक मिनट तक इसे घूर्णित किया

जाता है। शुष्क और आर्द्र बल्ब थर्मामीटर पर मापन और आपेक्षिक आर्द्रता की गणना हाइग्रोमितीय सारणी की सहायता से की जाती है। इसे सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि आर्द्र बल्ब तापमान को शीघ्र मापित कर लिया जाए अन्यथा मापन में थोड़ी-सी बढ़ोतरी हो जाती है।

विरलिंग हाइग्रोमीटर का संशोधित रूप पंखे से युक्त हाइग्रोमीटर है। इसके अलावा अनेक प्रत्यक्ष पठन उपकरण जैसे डायल टाइप हेयर हाइग्रोमीटर और पेपर हाइग्रोमीटर भी हैं पर ये बहुत अधिक विश्वसनीय नहीं हैं।

हाइग्रोमीटरों और थर्मामीटरों का सबसे बड़ा दोष यह है कि ये चौबीसों घंटे की अवधि की पठन-रिपोर्ट नहीं देते हैं। इस दोष का निराकरण थर्मोहाइग्रोग्राफ (प्लेट 3) से हो जाता है। थर्मोहाइग्रोग्राफ एक स्वतः रिकार्ड करने वाला उपकरण है जो चौबीसों घंटे चालू रहता है जिसके आधे में तापमान का माप और दूसरे आधे भाग में आपेक्षिक आर्द्रता का मापन होता है। यह उपकरण एक सिलिंडर से जुड़ा रहता है जो घड़ी की स्थिति में घूमता रहता है। सिलिंडर चौबीसों घंटे दिन भर या सप्ताह भर अनवरत, उपकरण के डिजाइन के अनुसार घूमता रहता है। उसमें दो पेन इस प्रकार स्थापित किए जाते हैं कि एक पेन द्विधातुक कॉयल से जुड़ा रहता है और दूसरा पेन दबाव द्वारा आर्द्रताग्राही तंतुओं के बंडलों से इस प्रकार जुड़ा रहता है कि वह ग्राफ-कागज को दबाए रखे। आर्द्रताग्राही तंतुओं का सिकुड़न और विस्तरण रिकार्ड रखता है। यह प्रायः केश-लड़ी की तरह उपकरण के अंदर बने हुए धागे से जुड़ा रहता है जो वायुमंडल की आपेक्षिक आर्द्रता के बढ़ने और घटने का अंकन नीचे वाले पेन की ऊपरी उठान और गिरने से करता है। अतः समयावधि की आपेक्षिक आर्द्रता का रिकार्ड ग्राफ में करना संभव है। इसी प्रकार द्विधातुक कॉयल जिसके ऊपर पेन जुड़ा रहता है, तापमान में वृद्धि होने के साथ-साथ घटती-बढ़ती रहती है और इसके साथ-साथ पेन की स्थिति ऊपर-नीचे होती रहती है। इसके परिणामस्वरूप ग्राफ में तापमान-वक्र भी अंकित हो जाता है। इससे दिन या सप्ताह की पूर्ण अवधि के तापमान और आपेक्षिक आर्द्रता का पूरा रिकार्ड तैयार हो जाता है।

आपेक्षिक आर्द्रता के मापन का सबसे सुविधाजनक उपकरण इलेक्ट्रानिक हाइग्रोमीटर है। इस उपकरण की सहायता से मापनी (स्केल) में आपेक्षिक आर्द्रता को प्रत्यक्ष रूप से पढ़ा जा सकता है।

मानीटरिंग की नीति

प्रायः जलवायु की परिस्थितियों के मापन के समय यह अनुभव किया जाता है

कि समस्त कक्षों, जिनमें सामग्रियां रखी रहती हैं, की जलवायु एक समान नहीं होती। इसे सुनिश्चित कर लेना आवश्यक है कि दिन, माह और वर्ष के विभिन्न कालों में विभिन्न स्थलों की जलवायु कैसी रहती है। थर्मोहाइग्रोग्राफ की सहायता से एक दीर्घकालीन अध्ययन किया जाता है और उसी के अनुरूप अत्यंत संवेदनशील संग्रहों को उसी स्थान में रखा जाता है जहां आर्द्रता का माप काफी स्थिर हो। इस प्रकार के अध्ययनों से यह सुनिश्चित करने में भी सहायता मिलती है कि शोकेसों की ऊष्मा-रोधन क्षमता या वायु-रोधिता में सुधार करने की आवश्यकता है अथवा नहीं।

आपेक्षिक आर्द्रता को भी नियंत्रित करने की आवश्यकता होती है। इस विषय पर काफी अध्ययन किया गया है, जिसके परिणामस्वरूप इसकी पुष्टि हो चुकी है कि संग्रहालयों, पुस्तकालयों एवं निजी संग्रहों की आपेक्षिक आर्द्रता का स्तर 45 से 60 प्रतिशत के मध्य तथा तापमान 68° से 76° फारेनहाइट (20° से 24° सेल्सियस) के मध्य होना चाहिए।

जलवायु नियंत्रण

जलवायु को नियंत्रित करने का सर्वोत्तम माध्यम वातानुकूलन है। संग्रहालय या पुस्तकालय के बाहर की स्थितियों को ध्यान में रखते हुए वातानुकूलन का मानदंड निर्धारित करना चाहिए। आर्द्र जलवायु में, आपेक्षिक आर्द्रता का उच्च स्तर 55 प्रतिशत या इसके अधिक रखना चाहिए, पर यह हर हालत में 65 प्रतिशत से कम होना चाहिए। शुष्क जलवायु में यह सीमा कम होनी चाहिए जो 45 प्रतिशत के आसपास प्रस्तावित है।

इसी प्रकार, गर्म देशों के लिए तापमान का निर्धारण अधिकतम 24° सेल्सियस होना चाहिए। ठंडी जलवायु वाले स्थानों में तापमान 20° सेल्सियस रखा जा सकता है।

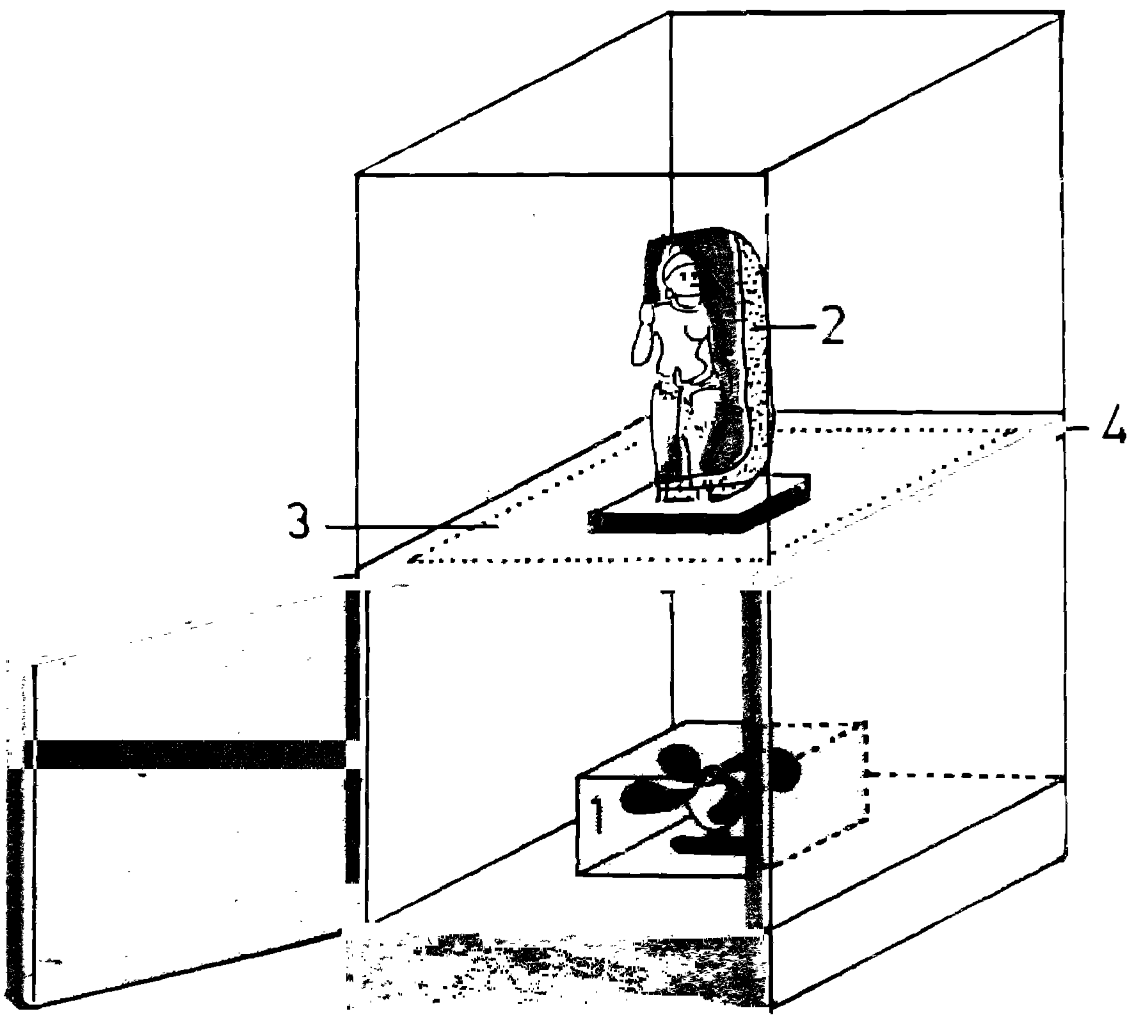
प्रायः यह प्रश्न उठाया जाता है कि वातानुकूलन में फिल्टरन का प्रयोग होना चाहिए अथवा नहीं। फिल्टरन की व्यवस्था स्थानीय परिस्थितियों पर निर्भर करती है। स्थिर वैद्युत फिल्टरन युक्ति को संग्रहालयों या पुस्तकालयों द्वारा कदापि प्रयोग में नहीं लाना चाहिए क्योंकि यह ओजोन को उत्पन्न करती है जो अनेक कलात्मक वस्तुओं और ग्रंथों के लिए एक हानिकारक गैस सिद्ध होती है।

वातानुकूलन चाहे किसी भी प्रकार का हो, उसमें इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए कि वह लगातार चालू रहे। प्रायः वातानुकूलन केवल कार्यालय समय में ही चालू रहता है और कार्यालय बंद हो जाने पर उसे भी बंद कर दिया जाता

है। ऐसा करना अत्यंत हानिकारक होता है। ऐसी स्थिति में वातानुकूलन न ही किया जाए तो उचित है क्योंकि इससे दिन और रात्रि के तापमान की स्थितियों में कृत्रिम उतार-चढ़ाव उत्पन्न होता है जो वस्तुओं पर अत्यंत हानिकारक और विनाश-कारी प्रभाव छोड़ता है। एक संग्रहालय में, ऐसी ही स्थितियों के फलस्वरूप, रात्रि में तापमान ओसांक के नीचे चले जाने से, द्रवण की स्थिति उत्पन्न हो गयी और वस्तुएं संक्षारित होने लगीं। ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जब ग्रीष्म ऋतु में तो वातानुकूलनों को चालू रखा जाता है, पर शीत ऋतु के आगमन पर उसे बंद कर दिया जाता है। ऐसा करना भी हानिकारक सिद्ध हो सकता है। इस प्रकार की व्यवस्था पुस्तकालयों के लिए अत्यंत हानिकारक है, क्योंकि पुस्तकें और पांडुलिपियां नमी को ग्रहण कर लेती हैं और द्रवण की स्थिति इस सामग्री को क्षति पहुंचाती है।

जलवायु को नियंत्रित करने के लिए वातानुकूलन बहुत ही उत्तम है, पर यह बहुत ही खर्चीला है। यदि संपूर्ण भवन को वातानुकूलित करना संभव नहीं हो तो चयन किए गए विशिष्ट क्षेत्रों को ही वातानुकूलित करने पर विचार किया जा सकता है। बहुधा कुछ कक्षों को वातानुकूलित करना संभव होता है। खास-खास शोकेसों तथा अलमारियों को अनुकूल सूक्ष्म-जलवायु प्रदान करने के लिए उनकी स्थानीय-जलवायु को नियंत्रित किया जा सकता है। इसी प्रकार शोकेसों के निचले भाग में लघु आकार के आर्द्रकरों को स्थापित किया जा सकता है जो बाहर से दिखाई नहीं देते हैं (चित्र 3)। सिलिका जैल को सील किए गए शोकेसों या अलमारियों के अंदर रखकर उनकी आपेक्षिक आर्द्रता को सामान्य रखा जा सकता है। इस रसायन की यह विशेषता है कि यह नमीदार वायु की आर्द्रता को अवशोषित कर उसे शुष्क वायु में परिवर्तित कर देता है। चारों ओर से घिरे हुए किसी स्थान के एक क्यूबिक सेंटीमीटर क्षेत्र के लिए 500 ग्राम सिलिका जैल रसायन की आवश्यकता पड़ती है (चित्र 4)। बंद शोकेसों के अंदर निआर्द्रीकरण के लिए बिना बुझे चूने के पिंडों को रखा जा सकता है। आर्द्रता को नियंत्रित करने का सबसे सरल तरीका सील्ड शोकेसों के अंदर काफी अधिक मात्रा में रूई इस तरह रखी जा सकती है कि वह बाहर से न दिखाई दे। रूई भी आर्द्रताग्राही होती है और जब वातावरण नमीदार होता है तो वह नमी को अवशोषित कर लेती है और जब वातावरण शुष्क होने लगता है तो नमी को बाहर निकाल देती है। यही कारण है कि कक्षों में सूती कपड़े के पर्दे उपयोगी होते हैं।

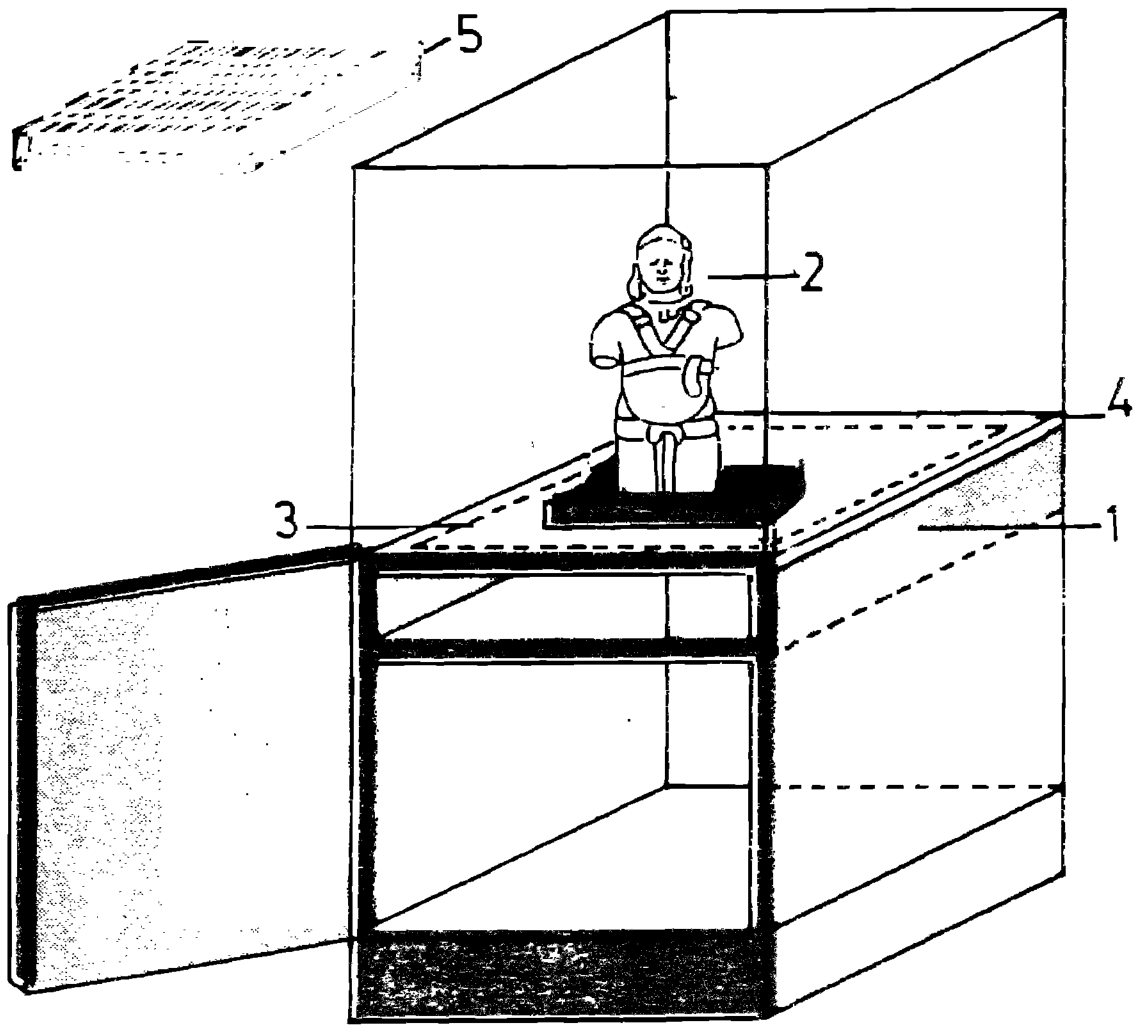
एक नए प्रकार का सिलिका जैल विकसित किया गया है जो सामान्य सिलिका जैल की तुलना में अपने प्रति यूनिट भार से अधिक जलवाष्प कणों को अवशोषित या विशोषित करने की क्षमता रखता है। इसका ट्रेड मार्क 'आर्ट-सोर्ब' है और



चित्र 3. शोकेसों के अंदर आर्द्रकर के प्रयोग से आर्द्रता में वृद्धि हो जाती है। इन शोकेसों में दो अनुभाग बने होते हैं। आर्द्रकर '1' निम्न अनुभाग के अंदर बनाया जाता है जिसका द्वार बहुत ही सख्ती से बंद रहता है, जिससे समय-समय पर उसकी देखभाल की जा सके। सामग्री '2' ऊपरी अनुभाग में रखी है। इन दोनों अनुभागों के मध्य एक तख्ता '3' बना होता है जिसमें छिद्र होते हैं। इन छिद्रों द्वारा निचले अनुभाग से ऊपरी अनुभाग '4' में आर्द्रता का परिसंचरण होता है।

इसकी निर्माता जापान की फूजी डिवीजन केमिकल्स लिमिटेड कंपनी है। आर्ट-सोर्ब बीड, शीट और कैसेट तीन रूपों में बाजार में उपलब्ध है। इसका बीड शोकेसों की दराजों के अंदर रखने के लिए उपयोगी होता है। शीट आकार चित्रों के फ्रेमों के अंदर सुगमता से रखा जा सकता है तथा इसका कैसेट रूप शोकेसों के अंदर रखने के काम आता है।

जापान में प्रतिष्ठापित 'निक्का पेलेट्स' व्यापारिक नाम से विख्यात एक और सामग्री आर्द्रता उभय प्रतिरोधी कारक के रूप में बहुत प्रभावशाली सिद्ध हुई है। पर निक्का पेलेट्स में दोष यह है कि तापमान में तीव्रता से परिवर्तन होने पर इसके प्रभाव की गति धीमी हो जाती है। जापानी टिशू कागज में निक्का पेलेट्स के पाउडर को लगाकर उसमें पोलिविनायल एल्कोहल के प्रकार के जलरागी



चित्र 4. शोकेस के अंदर आर्द्रकर के प्रयोग से आर्द्रता में वृद्धि होती है। शोकेसों में दो अनुभाग बने होते हैं। आर्द्रकर '1' निचले अनुभाग के अंदर बनाया जाता है जिसका द्वार सख्ती से बंद रहता है जिससे समय-समय पर उसकी देखभाल की जा सके। सामग्री '2' ऊपरी अनुभाग पर रखी जाती है। इन दोनों अनुभागों के मध्य एक तख्ता '3' बना होता है जिसमें छिद्र होते हैं। इन छिद्रों द्वारा निचले अनुभाव से ऊपरी अनुभाग '4' में आर्द्रता का परिसंचरण होता है।

योजक को प्रयुक्त करने से इसकी प्रभावक्षमता में वृद्धि होती है।

अनुसंधानों से यह पता चलता है कि द्विअक्षीय अभिविन्यस्त वाइनिलोन फिल्म में असाधारण गैसरोधी और नमीसह्य विशिष्टताएं होती हैं। आपेक्षिक आर्द्रता को नियंत्रित करने के लिए सर्वप्रथम चित्रों और पुस्तकों को आर्द्रता-प्रतिरोधक कागज में लपेट दिया जाता है और उसके उपरांत द्विअक्षीय अभिविन्यस्त फिल्म में कसकर बंद कर दिया जाता है।

जब किसी कला-सामग्री को प्रदर्शनी हेतु दूसरे स्थान पर ले जाया जाता है तो उपरोक्त प्रविधि का प्रयोग इन सामग्रियों की पैकिंग के लिए भी किया जा सकता है।

नवीन उत्खनित सामग्रियों को लपेटने के लिए 'बॉय फिल्म' का भी प्रयोग

किया जाता है। इससे भिन्न वातावरण में उन सामग्रियों को अन्य स्थान में ले जाने की संभावित क्षति या जोखिम भी कम हो जाता है। इस प्रकार की सामग्रियों को उनकी मूल स्थिति में तभी सुरक्षित रखा जा सकता है जब उत्खनित क्षेत्र के भूगर्भित वातावरण से बाहर निकाल कर 'बॉय फिल्म' में तत्काल लपेट दिया जाए।

कुछ वाणिज्यिक संस्थाएं यह प्रचार करती हैं कि निआर्द्रीकरण कला-वस्तुओं के लिए लाभप्रद होता है। फिर भी, यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि आपेक्षिक आर्द्रता पूर्व-निर्धारित स्तर तक रहनी चाहिए और इसका स्तर बहुत अधिक नीचे नहीं गिरना चाहिए क्योंकि निम्न आपेक्षिक आर्द्रता भी घातक सिद्ध हो सकती है।

लघु आकार के कक्षों की आर्द्रता में वृद्धि करने के लिए गमलों में पौधों, जलआर्द्रीकारकों अथवा खस के पर्दो, लकड़ी की पट्टियों या वानस्पतिक तंतुओं का प्रयोग वाष्पन प्रक्रिया की रोकथाम के लिए किया जा सकता है। इसी प्रकार सुवाह्य निआर्द्रकारकों का प्रयोग आर्द्रता को कम करने के लिए किया जा सकता है।

प्रायः इस तथ्य को पूर्णतया ध्यान में नहीं रखा जाता कि भवन का डिजाइन, उसके भीतरी भाग की जलवायु को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। 6 से 7 फरवरी 1972 को नयी दिल्ली में, 'सांस्कृतिक संपत्ति के संरक्षण' विषय पर एशिया-पैसिफिक सम्मेलन आयोजित किया गया था, जिसमें भवनों की सूक्ष्म जलवायु को प्रभावित करने वाले तथ्यों, जैसे भवन-विन्यास, योजना, आकार, वायु संचार व्यवस्था तथा भवनों के आंतरिक भाग से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर विचार किया गया था।

भवन के उपयुक्त डिजाइन से, जलवायुगत प्रभावों पर अंकुश लगाया जा सकता है। क्षेत्रीय जलवायु संबंधी उतार-चढ़ाव को नजरअंदाज करते हुए यह कहा जा सकता है कि जलवायु भवन को काफी हद तक प्रभावित करती है। उष्णकटिबंधी क्षेत्रों में सूर्य काफी प्रखर रहता है, इसके विपरीत शीतोष्ण प्रदेशों में जलवायु ठंडी रहती है। अतः उष्णकटिबंधी क्षेत्रों में भवनों, दीवारों, छतों, खिड़कियों तथा भवन-विन्यास की सूर्य की गर्मी और सौर-विकिरण से रक्षा एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। जब तक, इन सबका बचाव नहीं किया जाएगा, भवन का भीतरी भाग भी प्रभावित रहेगा।

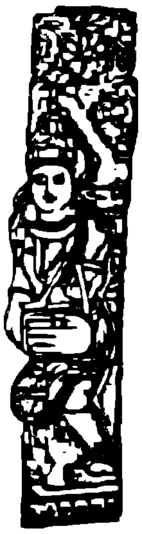
भवनों में, सौर विकिरण के प्रभावों को कम करने के लिए छतों तथा बाहरी दीवारों का प्रयोग दो प्रकार से किया जा सकता है। सर्वप्रथम सफेद तथा करीब-करीब सफेद रंग के पेंट का प्रयोग परावर्तन (रिफलेक्शन) सामग्री के रूप

में किया जा सकता है, जो काफी अधिक मात्रा में सौर-विकिरणों को भवन से परावर्तित कर सकती है। दूसरे, छतों और दीवारों की बनावट धूप को भवन में पहुंचने से रोक सकती है। बाहरी शेड बनाने से भवन शीतल रहता है। वृक्षों से भी कुछ छाया प्राप्त होती है।

यह भी देखने में आता है कि छतों का ऊष्मा वियोजन अथवा छद्म या दोहरी छत सौर विकिरण को बहुत कम कर सकती है। बाहरी दीवारों का बाहर की ओर निकले शेडों, किरणरोधी निर्माण तथा उपयुक्त निर्माण सामग्री का प्रयोग कर सौर-विकिरण से बचाव किया जा सकता है। इससे भवन के भीतरी भागों को अत्यधिक गर्मी से बचाया जा सकता है।

खिड़कियों तथा दूसरे खुले हुए स्थानों और दीवारों पर शेड लगाकर, सूर्य की किरणों से उत्पन्न गर्मी के प्रभाव को काफी कम किया जा सकता है। दीवार के बाहर सफेद रंग की पुताई कर ताप से बचा जा सकता है। उचित वायु-संचार व्यवस्था और कम तापीय ग्राह्यता वाली भवन सामग्री का प्रयोग कर ताप पर नियंत्रण किया जा सकता है।

भवन की योजना करते समय, यह निश्चित कर लेना आवश्यक है कि भवन को वातानुकूलित किया जाना है अथवा नहीं। यदि भवन को वातानुकूलित किया जाना है तो उसे प्राकृतिक-संवातन की आवश्यकता नहीं पड़ती। यद्यपि, विद्युत की अनियमित उपलब्धि को ध्यान में रखते हुए ऐसे विवेकपूर्ण ढंग से भवन की रचना की जानी चाहिए कि प्राकृतिक और कृत्रिम संवातन की व्यवस्था दोनों में सामंजस्य स्थापित रहे।



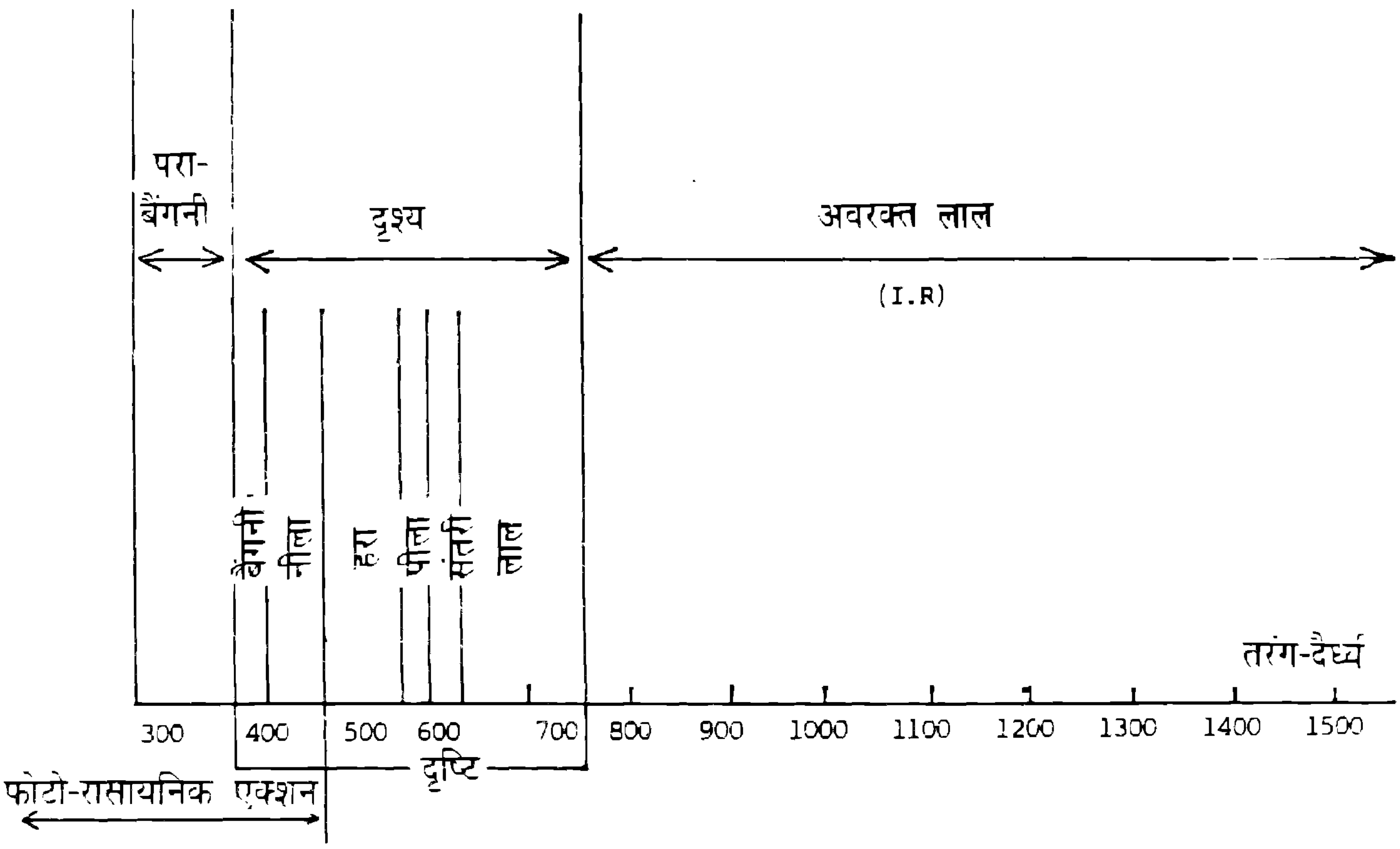
2

प्रकाश

प्रकाश प्राकृतिक हो अथवा कृत्रिम, कला-वस्तुओं के कुछ वर्गों को हानि पहुंचाता है। प्रायः पाषाण, धातु और सिरेमिक्स की वस्तुएं प्रकाश के प्रति संवेदनशील नहीं होती हैं। परंतु समस्त जैविक-पदार्थ (वस्त्र, कागज, प्राकृतिक इतिहास के नमूने, चित्र आदि) से निर्मित वस्तुएं इससे प्रभावित होती हैं। ऊष्णकटिबंधी क्षेत्रों में जहां पर पूरे वर्ष सूर्य की रश्मियां तेज पड़ती हैं, उन क्षेत्रों में कला-वस्तुओं को गंभीर क्षति पहुंच सकती है। इन वस्तुओं को हुई क्षति की मात्रा प्रकाश के स्रोत—उसकी प्रकृति और तीव्रता—तथा वस्तुओं के गुण-धर्म पर निर्भर करती है।

प्रकाश की प्रकृति

प्रकाश वैद्युत चुंबकीय ऊर्जा का एक प्रकार है, जिसमें दो प्रकार के विकिरण उत्पन्न होते हैं : दृश्य और अदृश्य। नेत्र प्रकाश के समस्त भागों के प्रति संवेदनशील नहीं होते। वे केवल प्रकाश-स्पेक्ट्रम के उसी भाग का अनुभव करते हैं जो 400 और 700 नैनोमीटर (शब्दावली देखें) के बीच के तरंग-दैर्ध्य (वेवलैंथ) के अंतर्गत आते हैं। यही कारण है कि इस प्रकाश-सीमा की उपस्थिति में ही कोई वस्तु दिखाई देती है। 400 नैनोमीटर से कम तरंग-दैर्ध्य में विकिरण परा-बैंगनी होता है और 700 नैनोमीटर से अधिक तरंग-दैर्ध्य की स्थिति में अवरक्त-विकिरण रहता है। ये दोनों प्रकार के विकिरण नेत्रों को दिखाई नहीं पड़ते। प्रकाश के तीन मुख्य स्रोत हैं : सूर्य का प्रकाश, प्रतिदीप्त (फ्लोरोसेंट) ट्यूब तथा तापदीप्त (इन्केंडेसेंट) बल्ब। प्रकाश का कोई भी स्रोत, चाहे वह प्राकृतिक हो अथवा कृत्रिम, जिस प्रकार का भी हो, वह किरणें फैलाता है। उसमें प्रायः दृश्य विकिरण और दूसरे प्रकार के



चित्र 5. प्रकाश-स्पेक्ट्रम : प्रकाश में दृश्य विकिरण और साथ ही ऐसे दूसरे प्रकार के विकिरण होते हैं, जिनके प्रति मानव नेत्र संवेदनशील नहीं होते।

विकिरण होते हैं जिसके लिए मानव-नेत्र संवेदनशील नहीं होते।

यह देखने में आया है कि 500 नैनोमीटर से कम तरंग-दैर्ध्यों में ऊर्जा, वस्त्र, कागज, चमड़ा तथा इसी प्रकार की अन्य सामग्रियों के अनेक आर्गेनिक-यौगिकों को नष्ट करने में सक्षम होती है। सामान्य प्रकाश में 300 नैनोमीटर से कम परा-बैंगनी विकिरण प्रायः नहीं होता क्योंकि वह सरलता से पृथ्वी के वायुमंडल में अवशोषित हो जाता है, जैसा कि सौर-प्रकाश और कांच के लैंपों में देखने में आता है। अतः यह स्पष्ट है कि 300 से 500 नैनोमीटर तरंग-दैर्ध्य वाला प्रकाश ही प्रकाश-रसायन अवक्रमण के लिए जिम्मेदार है। प्रकाश का यह फोटो-रासायनिक सक्रिय क्षेत्र स्पेक्ट्रम के लगभग परा-बैंगनी (300 से 400 नैनोमीटर) और बैंगनी व नीले (400 से 500 नैनोमीटर) क्षेत्र को ही आवृत्त करता है। यह देखा गया है कि सूर्य का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रकाश, चाहे वह बादलों से छनकर आ रहा हो अथवा प्रत्यक्ष रूप से पड़ रहा हो, प्रकाश ऊर्जा का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत है। तापदीप्त लैंपों में जो टंगसटन लैंपों के नाम से भी जाने जाते हैं, परा-बैंगनी और नीला प्रकाश ज्यादा नहीं होता। अतः संरक्षण की दृष्टि से ये प्रकाश के सबसे सुरक्षित स्रोत हैं। यद्यपि ये ऊष्मा उत्पन्न करते हैं, जिस कारण संग्रहालयों को कभी-कभी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

संग्रहालयों में प्रयोग के लिए फिलिप्स 37 फ्लोरोसेंट ट्यूब विशेष उपयोगी होती है क्योंकि इनमें परा-बैंगनी किरणों की मात्रा कम होती है।

प्रकाश की प्रभाव

संग्रहालयों की वस्तुओं पर प्रकाश का हानिकारक प्रभाव प्रकाश की तीव्रता, उसके उद्भासन की अवधि, स्पेक्ट्रमी विशेषताओं (जैसे प्रकाश में उपलब्ध फोटो-रासायनिक सक्रिय तरंग-दैर्ध्य) तथा वस्तुओं की विकिरण ग्रहणशीलता पर निर्भर करता है। प्रकाश के प्रभाव से चित्र और रंगीन वस्त्र बदरंग होने लगते हैं। वास्तव में, चित्रों और रंगे हुए वस्त्रों पर प्रकाश का प्रभाव दो प्रकार से पड़ता है। इनका रंग हल्का पड़ जाता है और उनको आधार देने वाली सामग्री, कागज या वस्त्र, का स्वरूप भी बिगड़ने लगता है।

कुछ बाहरी कारण जैसे आर्द्रता, तापमान और आक्सीजन आदि प्रकाश के विघटन की दर को प्रभावित करते हैं। उच्च-तापमान और उच्च-आर्द्रता की स्थितियां फोटो-रासायनिक प्रभाव में वृद्धि करती हैं। यदि तापमान में वृद्धि होती है तो वस्तुओं पर प्रकाश के प्रभाव से रासायनिक परिवर्तन की दर में वृद्धि होने लगती है।

अतः संग्रहालय या उन क्षेत्रों में, जहां पर नाजुक वस्तुओं को भंडारण या प्रदर्शन के लिए रखा जाता हैं, वहां प्रकाश को नियंत्रित रखने के लिए तीन बातों का ध्यान रखना चाहिए :

- वस्तुओं पर पड़ने वाले प्रकाश की तीव्रता को घटाया जाए;
- वस्तुओं पर न्यूनतम अवधि तक प्रकाश पड़ने दिया जाए;
- प्रकाश में व्याप्त फोटो-रासायनिक विकिरणों को प्रकाश से समाप्त कर दिया जाए।

वैज्ञानिक अन्वेषणों से यह सिद्ध हो चुका है कि अतिसंवेदनशील वस्तुएं, जैसे रंगीन वस्त्रों, भारतीय लघु-चित्रों, रंग-चित्रों और इसी प्रकार की कला-सामग्रियों पर प्रदीपन का स्तर 50 लक्स से अधिक नहीं बढ़ना चाहिए। लेकिन कुछ दूसरे प्रकार के चित्रों, जैसे तैल-चित्रों को 150 लक्स के तीव्र प्रकाश में भी कोई हानि नहीं होती और उनके लिए यह सुरक्षित सीमा है। यहां पर यह भी कहा जा सकता है कि लक्स प्रदीपन की एक इकाई है, जो एक मीटर त्रिज्या के गोलक के धरातल पर प्राप्त होती है।

प्रकाश के हानिकारक प्रभाव में कमी लाने के लिए अत्यंत संवेदनशील सामग्रियों को कम से कम अवधि तक प्रकाश के सम्मुख रखने का परामर्श दिया

जाता है। थोड़े समय तक उनको प्रदर्शनार्थ रखने के उपरांत उन्हें संग्रह-कक्ष में रख देना चाहिए अथवा ऐसे शोकेसों में प्रदर्शन हेतु रख दें जिन पर पर्दे लगे हुए हों और उन पर्दों को तभी हटाया जाए जब दर्शकगण उन्हें देखने आएं। ऐसे स्विचों की व्यवस्था की जा सकती है जिन्हें दर्शकगण स्वयं दबाएं तथा बिजली अपने आप थोड़ी देर बाद बंद हो जाए।

प्रकाश-नियंत्रण का तीसरा पहलू है कि परा-बैंगनी अवशोषक रसायनों का प्रयोग कर फोटो-रासायनिक सक्रिय विकिरणों को समाप्त कर दिया जाए। इन रसायनों को एक्रिलिक शीटों या फिल्मों में लगाया जाता है, जिन्हें प्रकाश-स्रोतों यथा खिड़कियों, बिजली की ट्यूबों या बल्बों के सामने लगा दिया जाता है। परा-बैंगनी अवशोषक प्लास्टिक खोल भी बनने लगे हैं, जो अवशोषक फ्लोरोसेंट ट्यूबों पर चढ़ाए जा सकते हैं। इसके लिए परा-बैंगनी वार्निश का लेप भी शीशों पर लगाया जा सकता है। सामान्यतः वार्निश पेंट, खोल के प्रयोग की तुलना में कम प्रभावी होता है और फिल्मों से अधिक महंगा पड़ता है, लेकिन यह टिकाऊ अधिक होता है।

प्रकाश के फोटो-रासायनिक घातक अंशों, जैसे 500 नैनोमीटर से कम तरंग-दैर्ध्य के विकिरण को विनष्ट करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रकाश वस्तु पर सीधा न पड़े और ऐसी व्यवस्था की जाए कि प्रकाश धरातल पर जिंक आक्साइड या टाइटेनियम ट्रिआक्साइड को पेंट करके परावर्तित किया जाए। इन रसायनों में परा-बैंगनी विकिरणों को अवशोषित करने की सामर्थ्य होती है।

सुरक्षात्मक-उपाय अनवरत ठीक से कार्य कर रहे हैं अथवा नहीं, इसे सुनिश्चित करने के लिए प्रकाश-मीटरों और परा-बैंगनी मानीटरों का होना आवश्यक है। जापान के डा. तोशिको केन्जो ने प्रकाश और परा-बैंगनी विकिरणों को मानीटर करने के लिए कागज-पट्टियों के प्रयोग की तकनीक को विकसित किया है। इस प्रणाली में विशेष रसायन लगी दो तरह की कागज-पट्टियां प्रयोग की गयी हैं : एक रोडेमाइन बी की 0.30 प्रतिशत घोल वाली और दूसरी लिथार्ज रसायन वाली। यह देखने में आया है कि रोडेमाइन की कागज-पट्टियां दृश्य विकिरणों और लिथार्ज पट्टियां परा-बैंगनी विकिरणों के प्रति संवेदनशील होती हैं। दोनों पट्टियों को कुछ इस प्रकार से रखा जाता है कि वे एक सप्ताह के लिए प्रकाश और परा-बैंगनी किरणों के संपर्क में रहें और इसके उपरांत रंगों का मिलान नियंत्रण पट्टियों से किया जाए। यदि पट्टियों का रंग हल्का पड़ जाता है तो समुचित उपाय किए जाने चाहिए।

फोटोग्राफी के लिए प्रकाश

कला-वस्तुओं की फोटो लेते समय अत्यधिक प्रकाश का प्रयोग उनके लिए अत्यंत हानिकारक होता है। अतः इसके लिए अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। यह देखने में आया है कि कला-वस्तुओं की फोटोग्राफी करते समय इलेक्ट्रानिक फ्लेश का प्रयोग टंग्सटन लैंप की तुलना में अधिक सुरक्षित है, क्योंकि उसमें प्रकाश की उद्भावन अवधि बहुत कम होती है। इनके संरक्षण के लिए आइ.सी.ओ.एम. की प्रकाश व्यवस्था समिति ने इलेक्ट्रानिक फ्लेश के प्रयोग के बारे में निम्नलिखित नियमों को प्रतिपादित किया है :

- दो से अधिक फ्लेश स्रोतों का प्रयोग न किया जाए;
- दोनों स्रोतों से प्राप्त कुल ऊर्जा 1400 जूल (वाट-सैकेंड) से अधिक नहीं होनी चाहिए;
- जिन वस्तुओं के चित्र खिंचने हों, उन्हें या संग्रहालय में रखी हुई अन्य सामग्रियों को, इन प्रकाश स्रोतों से तीन मीटर से अधिक दूरी पर होना चाहिए;
- फ्लेश के स्रोत फिल्टर से ढके रहने चाहिए, क्योंकि ये 380 नैनोमीटर से कम तरंग-दैर्ध्य के विकिरणों को अवशोषित करते हैं। ये परा-बैंगनी की लगभग पूरी मात्रा को अवशोषित कर लेते हैं; और
- एक मिनट की अवधि में एक बार से ज्यादा फ्लेश का प्रकाश नहीं पड़ना चाहिए।



3

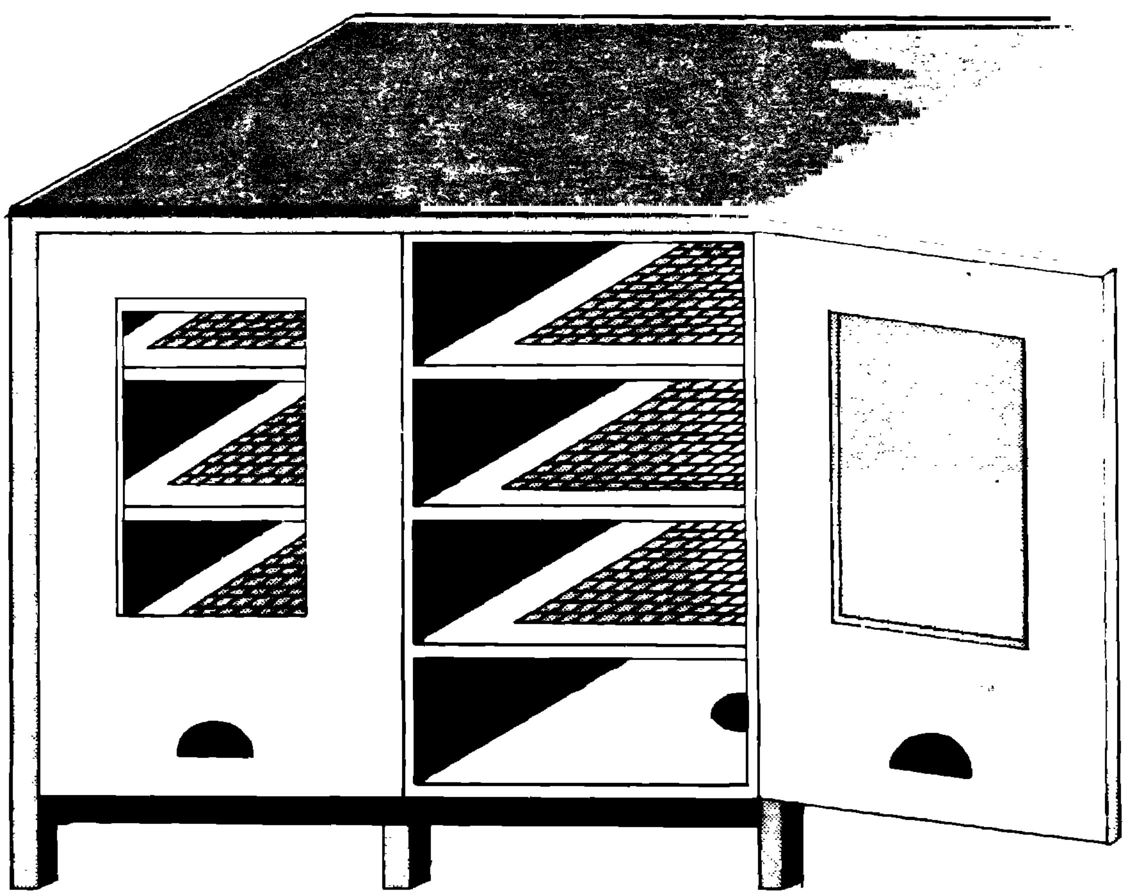
कीट

कला-वस्तुओं, मुख्यतया आर्गेनिक सामग्री जैसे काष्ठ वस्तुओं, वस्त्रों, पुस्तकों, पशु-स्मृति चिह्नों आदि के संभवतया कीट सबसे बड़े शत्रु हैं। ये वस्तुओं में छिद्र कर देते हैं और उन्हें क्षतिग्रस्त कर बुरी तरह खा जाते हैं (प्लेट 4)। पुस्तकों को सबसे अधिक हानि सिल्वर फिश तथा दीमकों (प्लेट 5) से पहुंचती है। शीतोष्ण जलवायु वाले क्षेत्रों की तुलना में ऊष्णकटिबंधी जलवायु वाले क्षेत्रों में कीटों का अधिक प्रकोप होता है क्योंकि उच्च तापमान और आर्द्रता कीटों के विकास में सहायक होती है।

कीटों के आक्रमण से बचाव के लिए भवनों का डिजाइन और उसके निर्माण में प्रयुक्त सामग्री की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जहां तक संभव हो कीटरोधी सामग्रियों जैसे स्टील की संरचनाओं का प्रयोग किया जाना चाहिए। लकड़ी की सामग्री को कीटरोधी बनाने के लिए उसका ठीक से उपचार किया जाना चाहिए जिससे विशेषतया दीमकों के आक्रमण से उनकी रक्षा हो सके। वातावरण में उच्च-आर्द्रता कीटों की जनन-सामर्थ्य में वृद्धि करती है। भवनों को वातानुकूलित और उनकी जलवायु को नियंत्रित किया जाना चाहिए। पर निर्धन और विकासशील देशों में साधनों के अभाव में वातानुकूलन के स्थान पर रसायनों का ही प्रयोग किया जाता है। अनेक प्रकार के कीटनाशी रसायन कीटों का विनाश करते हैं। पर कुछ इस प्रकार के रसायन भी होते हैं जो कीटों का विनाश नहीं करते वरन् उन्हें वस्तुओं से दूर भगा देते हैं। इन्हें 'प्रतिकर्षी' (रेपिलेंट्स) कहा जाता है। कलात्मक वस्तुओं, चित्रों तथा पुस्तकों के लिए ऐसे आदर्श कीटनाशी रसायनों का प्रयोग किया जाना चाहिए जो अपने विलायक रंगों को न छोड़ें ताकि उपचारित

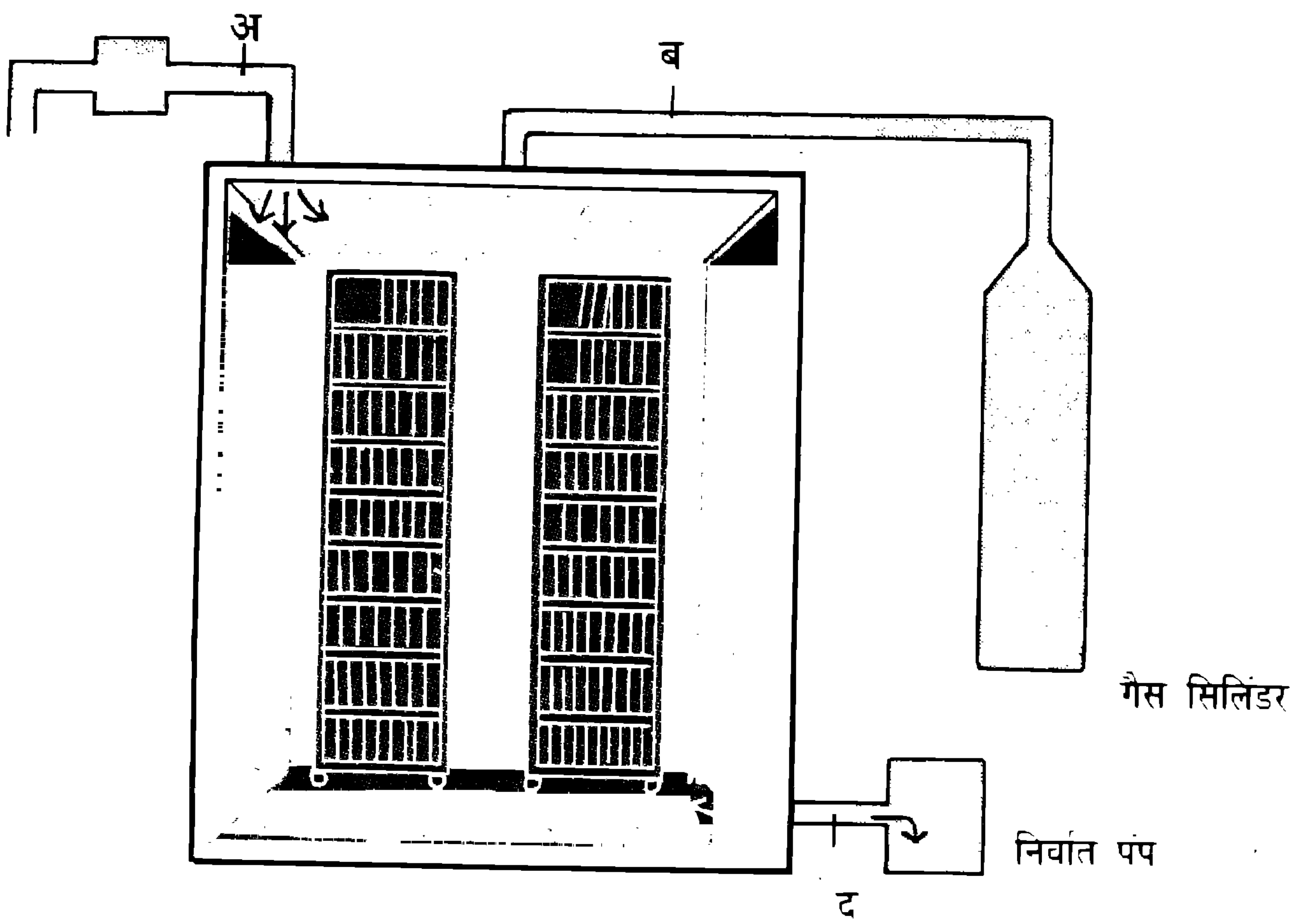
सामग्री के रासायनिक गुणधर्मों तथा उनके स्थायित्व पर कोई विपरीत प्रभाव न पड़े और प्रयुक्त कीटनाशी, मनुष्यों के लिए निराविषी और अप्रकोपक हों।

कीटनाशी रसायनों से कला-वस्तुओं के उपचार की दो प्रमुख विधियां हैं : (1) धूमन, तथा (2) घोल रूप में रसायनों का प्रयोग। यदि कीटों से प्रभावित वस्तुओं के स्थान को काफी लंबी अवधि तक पेराडाइक्लोरोबेंजीन, कार्बन डाइसल्फाइड, कार्बन ट्रेट्राक्लोराइड, मिथाइल ब्रोमाइड इत्यादि रसायनों के वाष्प से धूमित किया जाता है तो कीटों का नाश हो जाता है। कीटों की रोकथाम के लिए धूमन एक बहुत ही कारगर विधि है। इसका तुरंत प्रभाव होता है और वस्तुओं के लिए भी यह काफी सुरक्षित है। आर्गेनिक प्रकृति की वस्तुओं, विशेषकर मानवजातीय और प्राकृतिक इतिहास के नमूनों को संग्रहालय में रखने से पहले उन्हें धूमित कर लेना चाहिए। विशाल संग्रह वाले संग्रहालयों के अपने धूमन कक्ष या धूमन प्रकोष्ठ (चित्र 6) होते हैं। ये धूमन प्रकोष्ठ (चित्र 6) काष्ठ या स्टील से बनाए जाते हैं तथा इनमें एक या अधिक शेल्फ बने होते हैं।



चित्र 6. साधारण धूमन प्रकोष्ठ।

एक बेहतर तथा प्रभावी धूमन प्रकोष्ठ वह है जिसके भीतर ही निर्वात पैदा किया जा सके। प्रकोष्ठ स्टील की प्लेटों से बना होता है। वस्तुओं को प्रकोष्ठ के अंदर रखकर, उसके दरवाजे को कसकर बंद कर दिया जाता है। निर्वात पंप



चित्र 7. धूमन निर्वात प्रकोष्ठ : अ. निकास; ब. गैस निर्वातन; द. वायु निर्वाहन

को चालू कर दिया जाता है जिससे उससे भीतर की वायु खाली हो जाए। आवश्यक निर्वातन की स्थिति आ जाने पर, निर्वातन कक्ष के निकास द्वार को बंद कर दिया जाता है (चित्र 7)। यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि निर्वात-मार्ग ठीक से बंद हो गया है। इसके बाद गैस को, आवश्यक मात्रा में प्रकोष्ठ के अंदर भेजा जाता है और प्रवेश-मार्ग को बंद कर दिया जाता है। जब वस्तुओं का उपचार हो जाए, इसके बाद वायु-निकास पंखों को चालू कर दिया जाता है। इससे उनके अंदर जितना भी वाष्प बचा है वह समाप्त हो जाएगा। इसके बाद प्रकोष्ठ के द्वार को खोलकर सामग्रियों को बाहर निकाल लिया जाता है।

किसी भी प्रकार के धूमक को प्रयोग में लाने से पहले, यह अवश्य जान लेना चाहिए कि सामग्री किस वस्तु से बनी है और किस प्रकार के कीट उसे हानि पहुंचाते हैं और प्रयोग में लाए जाने वाले धूमक का सामग्री पर क्या प्रभाव पड़ेगा। कुछ धूमकों जैसे इथिलीन आक्साइड का चमड़े, आर्द्र कागज, पेंट, वार्निश, रेजिन इत्यादि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। मिथाइल ब्रोमाइड का रबड़, चमड़ा, ऊनी वस्तुओं, कागज, फोटोग्राफों, पंखों और इसी प्रकार की अन्य ऐसी सामग्रियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

धूमकों का प्रयोग करते समय इसे भी ध्यान में रखना चाहिए कि ये मनुष्यों

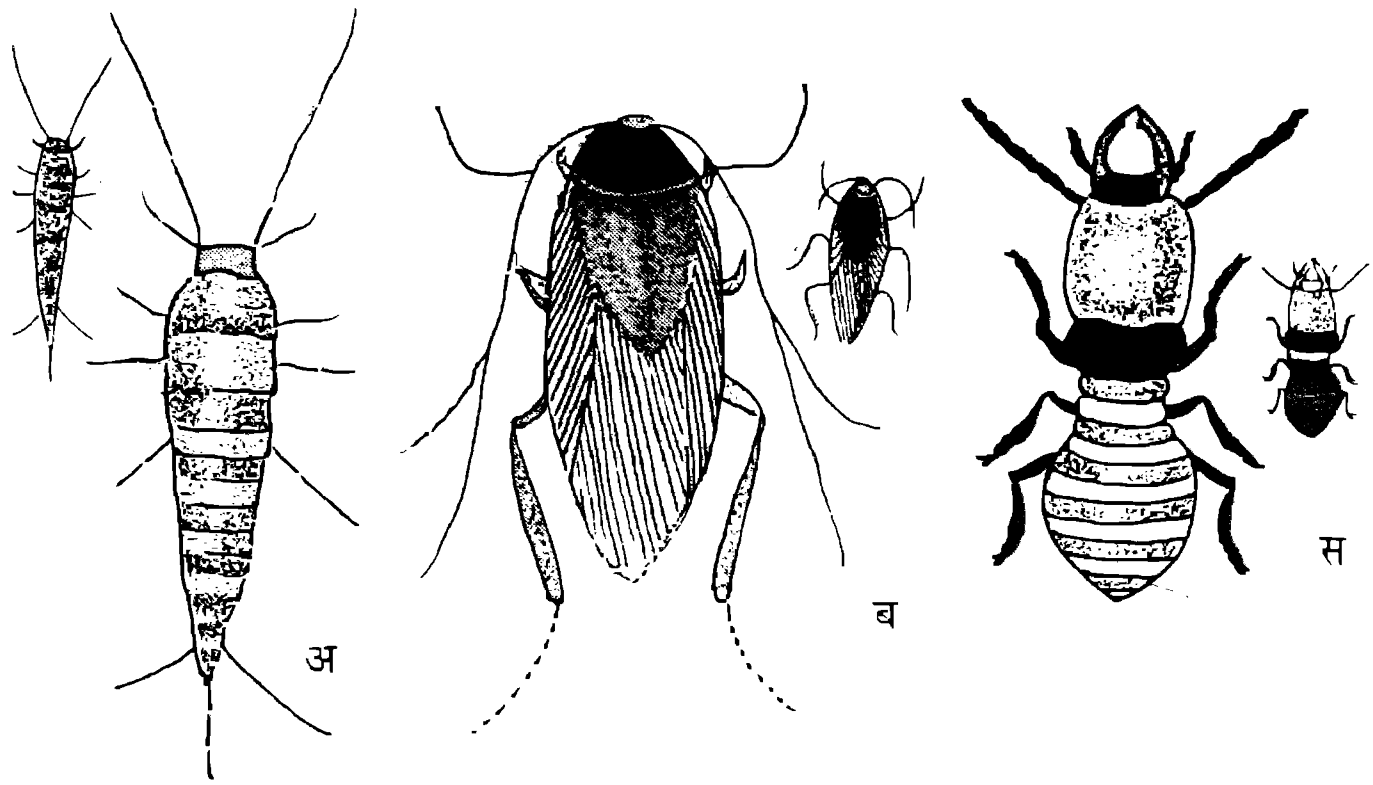
के लिए विषैले न हों। प्रायः यह चिंता का विषय है। इस पर ध्यान देना उचित ही है कि कुछ धूमकों की बहुत थोड़ी-सी मात्रा ही मनुष्यों के लिए विषाक्त होती है। यद्यपि, धूमन का वस्तुओं पर एकदम प्रभाव पड़ता है, पर इनमें एक कमी है कि इनका प्रभाव स्थायी नहीं होता और समय-समय पर धूमन क्रिया को दोहराना पड़ता है।

वस्तुओं में कीटनाशी घोल का प्रयोग अधिक स्थायी उपचार है, पर स्वास्थ्य की दृष्टि से यह अत्यंत हानिकारक है। वस्तु के उपचार के लिए, कीटनाशी घोलों को ब्रश से लगाया जाता है या घोल का स्प्रे किया जाता है। काष्ठ की वस्तुओं का उपचार करते समय सबसे प्रभावी तरीका यह है कि काष्ठ में जिन स्थानों पर कीटों ने छिद्र बनाए हैं उन छिद्रों के अंदर तरल घोल को सिरिंज द्वारा पहुंचाया जाए। कीटनाशी घोल, जिनमें डी.डी.टी., डी.डी.वी.पी., गेमेक्सीन, मरक्यूरिक क्लोराइड, पेंटाक्लोरोफिनोल और सोडियम लवण की तरह के रसायन, उपयोगी सिद्ध होते हैं।

संग्रहालय में रखे हुए विशाल संग्रहों के उपचार के लिए सदैव कीटनाशी रसायनों का प्रयोग संभव नहीं है। समस्त अलमारियों, दराजों, पर्दो, शेल्फों तथा दीवारों को तरल कीटनाशी रसायनों से उपचारित किया जाना चाहिए। इसके अलावा, पाउडर के रूप में प्रयुक्त कीटनाशी रसायन जैसे डी.डी.टी. या पाइरेथ्रम को शेल्फों में छिड़का जा सकता है ताकि इनके संपर्क में आने वाले कीट तत्काल नष्ट हो जाएं। ऐसे कीटनाशी जैसे कि पैराडाइक्लोरोबेंजीन जो वाष्पित होते हैं, को उन स्थानों में रखना चाहिए जहां पर कागज, वस्त्र, मुख्यतया ऊनी वस्त्र रखे हों। नेफ्थलीन रेपिलेंट की गोलियों या टुकड़ों को वस्त्रों के अंदर रख दिया जाता है ताकि कीट उन्हें क्षति न पहुंचाएं।

ऊष्णकटिबंधी क्षेत्रों में, सामग्रियों को क्षति पहुंचाने वाले कीटों में सिल्वर फिश, तिलचट्टे, दीमक, शलभ, भृंग, पुस्तक-यूक और झींगुर उल्लेखनीय हैं। सिल्वर फिश कीट, काष्ठ लुगदी और कागज को क्षति पहुंचाते हैं (चित्र 8 क)। आर्सेनिक पेंटाक्साइड जैसे कीटनाशी को, आटे की लुगदी में मिलाकर, चित्रों और पांडुलिपियों की सुरक्षा के लिए प्रयोग किया जाता है। 'सिल्फी' ट्रेड-मार्क से विख्यात कुछ खास प्रकार के कीटनाशी कागजों को शोकेसों, पुस्तकालयों के पुस्तक-ताकों, चित्रों के पीछे के भागों में या संग्रह क्षेत्रों में रखा जाता हैं। इन कार्यों के लिएं 'सिल्फी' कागज काफी प्रभावी सिद्ध हुआ है।

समस्त ऊष्णकटिबंधी क्षेत्रों में तिलचट्टे पाए जाते हैं। ये पांडुलिपियों, वस्त्रों, पुस्तकों, पत्रिकाओं, चमड़े, ताड़पत्रों और मानवजातीय तथा प्राकृतिक इतिहास



चित्र 8. अ. सिल्वर फिश व. चिलचट्टा, स. दीमक

के नमूनों को क्षति पहुंचाते हैं (चित्र 8 ख)। जिल्दसाजी में प्रयुक्त सरेस से उन्हें विशेष लगाव होता है। क्लोरोडेन, पाइरेथ्रम, डी.डी.टी., सोडियम फ्लोराइड तथा 'बेगोन बेट' रसायन जिसके निर्माता मे तथा बेकर हैं, तिलचट्टों के लिए विनाशकारी हैं। दीमक या सफेद चींटियां काष्ठ के लिए बहुत घातक सिद्ध होती हैं (चित्र 8 ग)। ये कार्बनिक पदार्थों जैसे चर्म, चित्रों, पांडुलिपियों, पुस्तकों और वस्त्रों को नष्ट कर देते हैं (प्लेट 6)।

दीमकों के दो प्रमुख प्रकार हैं—शुष्क काष्ठ दीमक और भूमिगत दीमक। भूमिगत दीमक अपना संपर्क भूमि से रखती है जबकि शुष्क-काष्ठ दीमक लकड़ी में पाई जाती है और यह मिट्टी यानी जमीन से दूर रहती है। भारत की तरह ऊष्णकटिबंधी जलवायु वाले क्षेत्रों में, जब भवनों को बनाया जाता है तो भूमिगत दीमक की कालोनियों को समाप्त करने के लिए नींव डालते समय डी.डी.टी., बी.एच.सी. या डायलड्रिन को मिट्टी में मिला दिया जाता है। इसके अलावा नींव की दीवारों, स्तंभों और विभाजक-दीवारों के खसकों तथा भवन स्तर के ऊपर, धातु का बना दीमक-अवरोधी कवच बनाया जाता है।

उन क्षेत्रों में जहां निर्माण-कार्य से पहले, दीमकों से बचाव की आवश्यक कार्यवाही नहीं की गई, वहां यह जरूरी है कि आवश्यक उपचार बाद में कर लिया जाए। दीवारों के चारों ओर 15 सेंटीमीटर की गहराई तक इस प्रकार गड्ढे

खोदने चाहिए ताकि भवन का नींव वाला भाग साफ दिखाई देने लगे तथा नींव के निकट 15 सेंटीमीटर के अंतराल में छिद्र बनाने चाहिए। इन छिद्रों में कीटनाशी की संपूर्ण मात्रा का आधा भाग डालना चाहिए और बचे हुए कीटनाशी के आधे भाग को गड्ढे भरने वाली मिट्टी में मिला देना चाहिए। फर्श और दीवार के जोड़ों तथा फर्श के धरातल की दरारों के भीतर कीटनाशी रसायनों को डालना चाहिए। कभी-कभी दीमक काष्ठ की संरचनाओं के भीतरी भागों को क्षति पहुंचा देती है। उन समस्त काष्ठ की वस्तुओं को जिन्हें दीमकों ने क्षतिग्रस्त किया है तुरंत बदल देना चाहिए और बचे हुए भागों का कीटनाशी घोल से उपचार किया जाना चाहिए।

दीमक लगी सामग्री को तुरंत अलग करके, साफ करने के बाद धूमित किया जाना चाहिए।

पुस्तकालयों, वनस्पति-संग्रहालयों तथा संग्रहालयों में पुस्तक-यूक काफी सक्रिय रहते हैं। अधिकांश का आकार छोटा होता है और इनके पंख काफी विकसित होते हैं। पर इनकी कुछ ऐसी भी प्रजातियां होती हैं जिनके पंख नहीं होते। ये अन्य कीटों को गंभीर हानि पहुंचाते हैं और इन कीटों की खोपड़ी और बालों को खा जाते हैं। यदि इनका समय-समय पर रासायनिक उपचार नहीं होता तो ये कीट पुस्तकों में लगी हुई लुगदी और सरेस को खाकर पुस्तकों को क्षतिग्रस्त कर देते हैं। इस जाति के कीट ताड़पत्रों और पुस्तकों को भी क्षति पहुंचाते हैं (प्लेट 7)। इन कीटों से रक्षा के लिए पैराडाइक्लोरोबेंजीन और नेफ्थलीन बहुत ही प्रभावी होते हैं। इसी प्रकार डी.डी.टी. पाउडर या इमल्शन का छिड़काव भी पुस्तक-शेल्फों पर किया जा सकता है जो काफी लाभदायक होता है।

परिधान शलभ वस्त्रों के लिए हानिकारक होते हैं। इन कीटों को दूर भगाने के लिए पैराडाइक्लोरोबेंजीन तथा नेफ्थलीन की गोलियां या टुकड़े बहुत ही कारगर विकल्प हैं।

शलभ कीटों से रक्षा करने के लिए, कभी-कभी अल्कोहल मिले 1 प्रतिशत पेंटाक्लोरोफिनोल के घोल का छिड़काव अथवा इस घोल का ब्रश से वस्त्रों पर लेप किया जाता है। यद्यपि, इस विधि की सिफारिश संग्रहालय में रखी हुई वस्तुओं के लिए नहीं की जाती है। ऊनी वस्त्रों पर बार-बार इनका छिड़काव नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि इन रसायनों में भिगोने और इनका छिड़काव करने से वस्त्रों के तंतु कमजोर पड़ जाते हैं।

गद्देदार फर्नीचर को नियमित रूप से साफ कर, धूप लगवानी चाहिए और उन पर कीटनाशक रसायनों का छिड़काव किया जाना चाहिए। गलीचों को भी नियमित रूप से साफ किया जाना चाहिए। इन्हें पालिथीन की थैलियों के अंदर

रख देना चाहिए और नेफ्थलीन के फ्लेक्स भी इसमें छिड़क देने चाहिए।

कुछ खास प्रकार के शलभ, संग्रहित प्राकृतिक इतिहास के नमूनों, विशेषकर स्तनधारी (मैमेलियन) जीवों और पक्षियों, को हानि पहुंचाते हैं। इन कीटों के आक्रमण से रक्षा के लिए स्तनधारी वर्ग के पशुओं के अवशेषों को फिटकरी और आर्सेनिक ट्राइआक्साइड रसायन तथा पक्षियों की चमड़ी को बोरेक्स से उपचारित किया जाना चाहिए। प्राकृतिक इतिहास के सुरक्षित नमूनों को धातु की बंद अलमारियों में रखा जाना चाहिए और इनके भीतर पैराडाइक्लोरोबेंजीन को अवश्य रखना चाहिए।

सांस्कृतिक संपदाओं, जैसे—काष्ठ, वस्त्रों, पंखों, चमड़े, पुस्तकों आदि को भृंग कीट गंभीर हानि पहुंचाते हैं। काष्ठ की संरचनाओं में, काष्ठ चूर्णकारी भृंगों की उपस्थिति का ज्ञान, उनके द्वारा बनाए गए छेदों तथा उन स्थानों में प्राप्त महीन चूरे से होता है (प्लेट 8)। इन कीटों पर नियंत्रण, जल पर आधारित कीटनाशी रसायनों, जैविक विलायकों या विभिन्न प्रकार की गैसों से किया जा सकता है। ड्रायलड्रिन, लिंडेन या गेमेक्सीन का घोल इन कीटों से रक्षा के लिए बहुत ही प्रभावी उपाय है। ऐतिहासिक या कलात्मक महत्व के कीटों से प्रभावित काष्ठ स्तंभों के नीचे के भागों के संरक्षण के लिए तीन भाग सोडियम फ्लोराइड, एक भाग सोडियम सिलिको फ्लोराइड और चौथाई भाग पानी डालकर उस घोल को छिद्रों में बार-बार प्रविष्ट कराकर उन्हें संरक्षित किया जाता है।



4

कवक

आर्द्र जलवायु वाले, ऊष्णकटिबंधी देशों में, सांस्कृतिक संपदाओं को विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म-जीवों जैसे कवक, शैवाल, जीवाणुओं, लाइकैन तथा मॉस आदि से काफी खतरा होता है। सामान्यतया जीवाणुओं, शैवालों और मॉस की संवृद्धि के लिए नमीदार वातावरण अधिक अनुकूल होता है और चारों ओर से खुले हुए स्थानों में इसे स्मारकों और मूर्तियों के ऊपर देखा जा सकता है (प्लेट 9)। संग्रहालय-सामग्रियों, विशेषकर जैविक वस्तुओं को कवक गंभीर क्षति पहुंचाता है। ये अपनी-अपनी खाद्य सामग्रियों को प्रकाश-संश्लेषी नहीं कर पाते हैं, इसी कारण ये जिस सामग्री पर उत्पन्न हो जाते हैं, उसे क्षति पहुंचा देते हैं। प्रायः वे वायुजीवी होते हैं और अपनी संवृद्धि के लिए इन्हें केवल वायु की आवश्यकता होती है। लेकिन इनकी कुछ ऐसी भी जातियां हैं जो अवायुजीवी होती हैं और इन्हें अपनी संवृद्धि के लिए वायु की आवश्यकता नहीं होती। खाद्य पदार्थों जैसे डबलरोटी, अचार, जैम इत्यादि में कवक की वृद्धि बड़ी तेजी से होती है। संग्रहालयों में संग्रहित कागज, चित्रों, चमड़े, काष्ट, वस्त्रों इत्यादि से निर्मित वस्तुओं पर ये उत्पन्न हो जाते हैं।

कवक, कागज, चमड़े और वस्त्र के स्वरूप को बिगाड़ देता है और इसके प्रभाव से सामग्रियों में धब्बे पड़ जाते हैं। चित्रों और पाषाण सामग्रियों को यह विरूपित कर देता है और काष्ठ से बनी हुई वस्तुओं को नष्ट कर देता है। इसमें विभिन्न प्रकार की सैलुलोसी सामग्रियों जैसे कागज एवं चमड़े के रासायनिक और यांत्रिक गुणधर्मों को परिवर्तित करने की क्षमता होती है (प्लेट 10)। चमड़े की वस्तुएं विशेष रूप से कवक से अधिक प्रभावित होती हैं। कभी-कभी वस्तु के सतह के नीचे कवक लग जाता है, उदाहरणार्थ लघु-चित्रों को आलंबन देने वाले

कागजों की तहों पर। मुख्यतया वर्षाकाल में पुस्तकों और पत्रिकाओं की चमड़े की जिल्दों के ऊपर कवक लग जाता है। कुछ तैल-चित्र, जो नमी वाले तहखाने में रखे हों, कुछ ही दिनों में कवक से प्रभावित हो जाते हैं।

कला-सामग्रियों की कवक के प्रकोप से दो उपायों द्वारा रक्षा की जा सकती है—निरोधक उपाय तथा उपचारात्मक उपाय। जैसा कि विदित ही है कि कवक की संवृद्धि में नमी का बहुत महत्वपूर्ण हाथ रहता है। अतः नमी की रोकथाम, इसके प्रकोप को रोकने का सर्वोपरि उपाय है। इसके लिए वातानुकूलन बहुत प्रभावी होता है। पर वातानुकूलन के अभाव में, ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि वायु का समुचित प्रवाह भवन में बना रहे।

कवक से रोकथाम के लिए भवन और उसमें रखी वस्तुओं की स्वच्छता बहुत आवश्यक है। समय-समय पर समस्त वस्तुओं, जैसे पुस्तकों, पांडुलिपियों, चित्रों आदि को शैल्फ से बाहर निकालकर, मुलायम ब्रश या धीमी गति से निर्वातन प्रविधि द्वारा उन पर लगी हुई धूल को बाहर निकाल देना चाहिए। इसमें उन अन्य तरीकों को भी व्यवहार में लाना चाहिए जिनका उल्लेख जलवायु संबंधी अध्याय में है।

जिन स्थानों में कागज, वस्त्र आदि आर्गेनिक या जैव पदार्थ रखे हुए हों, उन भंडारों को विसंक्रमित किया जाना चाहिए। ऐसा करना अत्यंत उपयोगी होगा। इसके लिए 10 प्रतिशत थाइमोल के घोल को परिशोधित स्पिरिट में मिलाकर प्रयोग में लाया जाना चाहिए। एक अच्छे प्रकार के नोजल की सहायता से इस घोल का कमरे में छिड़काव किया जाना चाहिए। यद्यपि, इसमें परिशोधित स्पिरिट उपस्थित रहने से आग लगने का खतरा रहता है। इसके लिए आवश्यक उपाय कर लेने चाहिए।

उपचार का सबसे श्रेष्ठ तरीका है कि वस्तु की सतह के ऊपर लगे हुए सूखे कवक को हटाकर, उसमें उपयुक्त कवकनाशी रसायनों का प्रयोग कर धूमनकक्ष के अंदर रख दिया जाए। कवकनाशी के रूप में थाइमोल सबसे प्रभावी है जो थोड़ी-सी ही गर्मी के प्रभाव से वाष्प में परिणत हो जाता है। कुछ मामलों में थाइमोल के 5 प्रतिशत घोल को परिशोधित स्पिरिट में मिलाकर उपचार की जाने वाली सामग्री में लगाया जा सकता है। पर इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि परिशोधित स्पिरिट वस्तु को प्रभावित न करे। कागजों तथा चित्रों को रोगाणुओं से सुरक्षित रखने के लिए कवकनाशी कागजों में लपेटकर लगभग एक सप्ताह तक पालिथीन की थैलियों के अंदर सुरक्षित रखा जाना चाहिए। कवकनाशी कागज 10 प्रतिशत पी-क्लोरो-मेटा-क्रिसोल घोल या 1 प्रतिशत फेनिल मरक्यूरिक एसिटेट भिगोने के बाद सुखाकर निर्मित किया जाता है।



5

वायुमंडलीय प्रदूषण

उद्योगीकरण के फलस्वरूप, मुख्यतया नगरीय क्षेत्रों के वायुमंडल में प्रदूषण का उद्गम हुआ। पाषाण-स्मारकों और कला-सामग्रियों के क्षय में प्रदूषण का महत्वपूर्ण स्थान है। भारत में, मुख्यतया मथुरा के तेल शोधन कारखाने तथा आगरा में स्थित अनेक ढलाई के कारखानों के कारण, आगरा में काफी प्रदूषण बढ़ गया जिसके फलस्वरूप ताजमहल को क्षति पहुंच रही है। प्रदूषण संग्रहालय में रखी हुई सामग्रियों को काफी हानि पहुंचाता है। यदि वातावरण प्रदूषित हो तो चमड़ा, वस्त्र, कागज और चित्र इत्यादि क्षयग्रस्त हो सकते हैं।

जल-वाष्प के अलावा वातावरण में अनेक ऐसे संदूषक और गैसें पाई जाती हैं जो कला-सामग्रियों के लिए हानिकारक होती हैं। उदाहरणार्थ, औद्योगिक वातावरण में सल्फर-डाइआक्साइड, नाइट्रोजन आक्साइड और हाइड्रोजन सल्फाइड गैसें विद्यमान होती हैं जिनके स्रोत औद्योगिक इकाइयां, मोटर-गाड़ियां तथा इंजन इत्यादि हैं। राजस्थान जैसी शुष्क जलवायु में धूल या बालुकण प्रमुख संदूषक की भूमिका निभाते हैं। तटवर्ती क्षेत्रों को वायु में लवण की मात्रा की अधिकता से संकट का सामना करना पड़ता है। समुद्र तट पर स्थित महाबलीपुरम् का मंदिर उसका एक ज्वलंत उदाहरण है। ग्रेनाइट प्रस्तर से बने इस मंदिर पर, उकेरकर बने अलंकरणों तथा मूर्तियों को वातावरण में उपस्थित लवण के प्रभाव ने गंभीर क्षति पहुंचाई है।

केन्जो तोइशी तथा टी. केन्जो ने यह प्रतिपादित किया है कि नए कंक्रीट के भवनों के भीतरी भागों में उपस्थित प्रदूषण से भवन के भीतर रखी हुई कलात्मक सामग्रियों को गंभीर खतरा होता है। सीमेंट के बने नए भवनों से अत्यंत बारीक क्षारीय धूल के कण झड़ते हैं। ये कण तैल-चित्रों, सिल्क, रंजकों और वर्णकों को हानि पहुंचाते हैं। अतः कलात्मक वस्तुओं को क्षारीय खतरों से मुक्त रखने के लिए

इसका समर्थन किया गया है कि भवन तैयार हो जाने के बाद, एक या दो गर्मियों के मौसम तक उसे खाली रखने के उपरांत उसका वास्तविक प्रयोग हो। क्षारीय प्रभाव को रोकने के लिए कंक्रीट धरातल पर अम्लीय पेंट लगाने से क्षार का खतरा कुछ कम हो सकता है।

इसका भी ध्यान रखना चाहिए कि अनेक प्रकार की काष्ठ की किस्में वाष्पशील पदार्थों को उत्सर्जित करती हैं जो कला सामग्रियों, पुस्तकों आदि को हानि पहुंचाती हैं। ऐसे उदाहरण हमें देवदारू और चीड़ के नए वृक्षों की लकड़ी के प्रयोग से प्राप्त होते हैं। इन वृक्षों की लकड़ी से राल की तरह का पदार्थ निकलता है जो वस्तुओं पर जमा हो जाता है।

प्रदूषण पर नियंत्रण

जिन कमरों में प्राचीन कला वस्तुओं को रखा गया हो, वहां के वातावरण या कमरों के वायुमंडल में फैली हुई हानिकारक गैसों को बाहर निकालने का सबसे प्रभावी तरीका सक्रिय कार्बन फिल्टर या जल द्वारा स्प्रे करना है। यह प्रक्रिया केवल वातानुकूलित भवनों के लिए ही संभव है।

कला वस्तुओं को टिशू कागज या स्वच्छ वस्त्र से लपेटकर रखने से उन पर गैसों से पड़नेवाले हानिकारक प्रभावों को काफी कम किया जा सकता है। बाहर प्रदर्शनार्थ रखी हुई वस्तुओं की तुलना में शोकेसों में रखी हुई वस्तुएं अधिक सुरक्षित रहती हैं। इसी कारण जो चित्र कांच के फ्रेम में मढ़े रहते हैं वे उन चित्रों की तुलना में अधिक सुरक्षित रहते हैं जो पूर्णतया खुले रखे रहते हैं।

चांदी के बरतनों को बदरंग होने से बचाने के लिए उन्हें टिशू कागज में लपेटकर रखना चाहिए। इनके ऊपर साफ वार्निश का एक कोट लाभप्रद सिद्ध होता है।

कभी-कभी संग्रहालय की सामग्रियों को धूल से होने वाली हानि से छोटी-छोटी सावधानियां बचा सकती हैं। सामग्रियों में धूल न इकट्ठी हो, इसके लिए संग्रहालय के भीतरी और बाहरी भाग की सफाई रखना अत्यावश्यक है। समस्त भंगुर सामग्रियों, पांडुलिपियों, वस्त्रों, चित्रित और उकेरी हुई काष्ठ सामग्रियों को धूल-रोधी शोकेसों के अंदर रखा जाना चाहिए।

कभी-कभी इलेक्ट्रोस्टेटिक प्रिसिपीरेटर का प्रयोग किसी विशिष्ट पदार्थ को हटाने के लिए किया जाता है। धूल के बहुत महीन कणों को निकालने में ये अति समर्थ होते हैं। इनका प्रयोग कलात्मक वस्तुओं के लिए बहुत घातक होता है क्योंकि ये ओजोन उत्पन्न करते हैं।



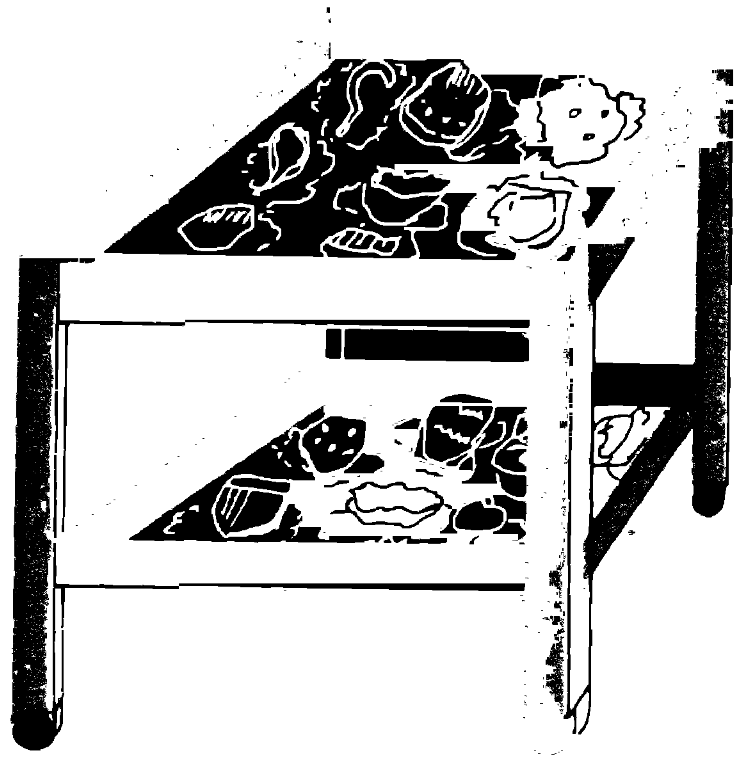
6

कला-वस्तुओं का गलत रखरखाव

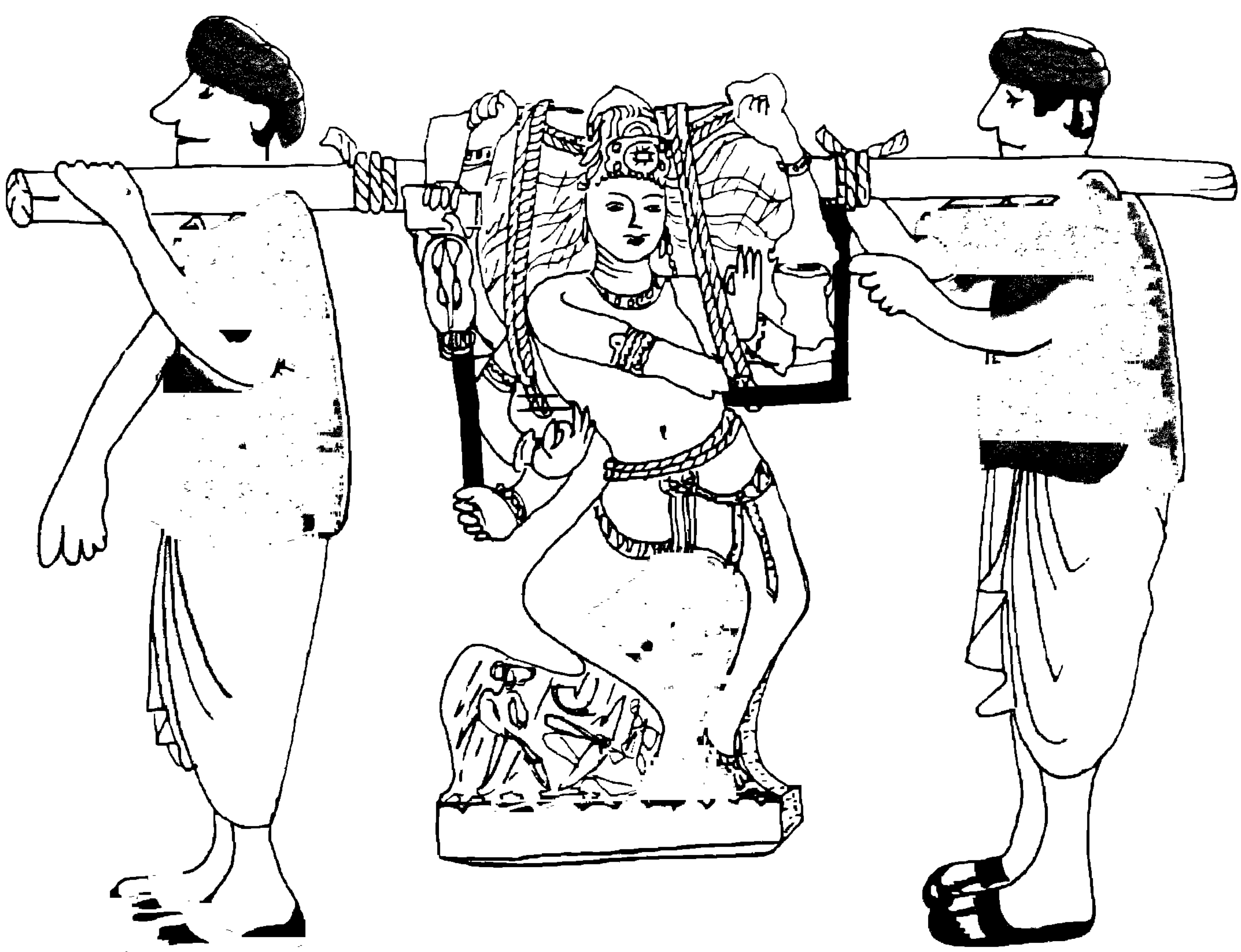
इसमें संदेह नहीं कि कला-वस्तुओं को क्षति पहुंचाने में प्राकृतिक कारणों जैसे, वातावरण, प्रकाश, कीटों और कवकों का योगदान तो रहता ही है, पर इसके साथ-साथ कलात्मक सामग्रियों को रखने, एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित करने और प्रदर्शन के गलत तरीकों का प्रयोग करने से भी इन्हें क्षति पहुंचती है।

सर्वप्रथम उन क्षेत्रों को जहां पर कला-वस्तुओं पर कार्य चल रहा हो, पूर्णतया स्वच्छ रखना चाहिए। प्रायः यह देखने में आता है कि पसीने और हाथों की चिकनाई से उनमें धब्बे पड़ जाते हैं। हाथों से प्राकृतिक तैल पदार्थ निकलता है और उन सामग्रियों पर एकत्रित हो जाता है जिससे उन पर धूल जमा हो जाती है। यह रासायनिक दृष्टि से हानिकारक है। इसलिए यह सुझाव दिया जाता है कि कला-वस्तुओं की देखभाल करते समय हाथों में कपड़े के दस्ताने पहन लेने चाहिए अथवा जिस वस्तु की देखभाल की जा रही हो उस सामग्री और हाथों के बीच में स्वच्छ वस्त्र को रख लेना चाहिए। लघु-चित्रों, पांडुलिपियों, फोटो, स्लाइडों और निगेटिवों की चित्रित सतह को हाथ से स्पर्श नहीं करना चाहिए।

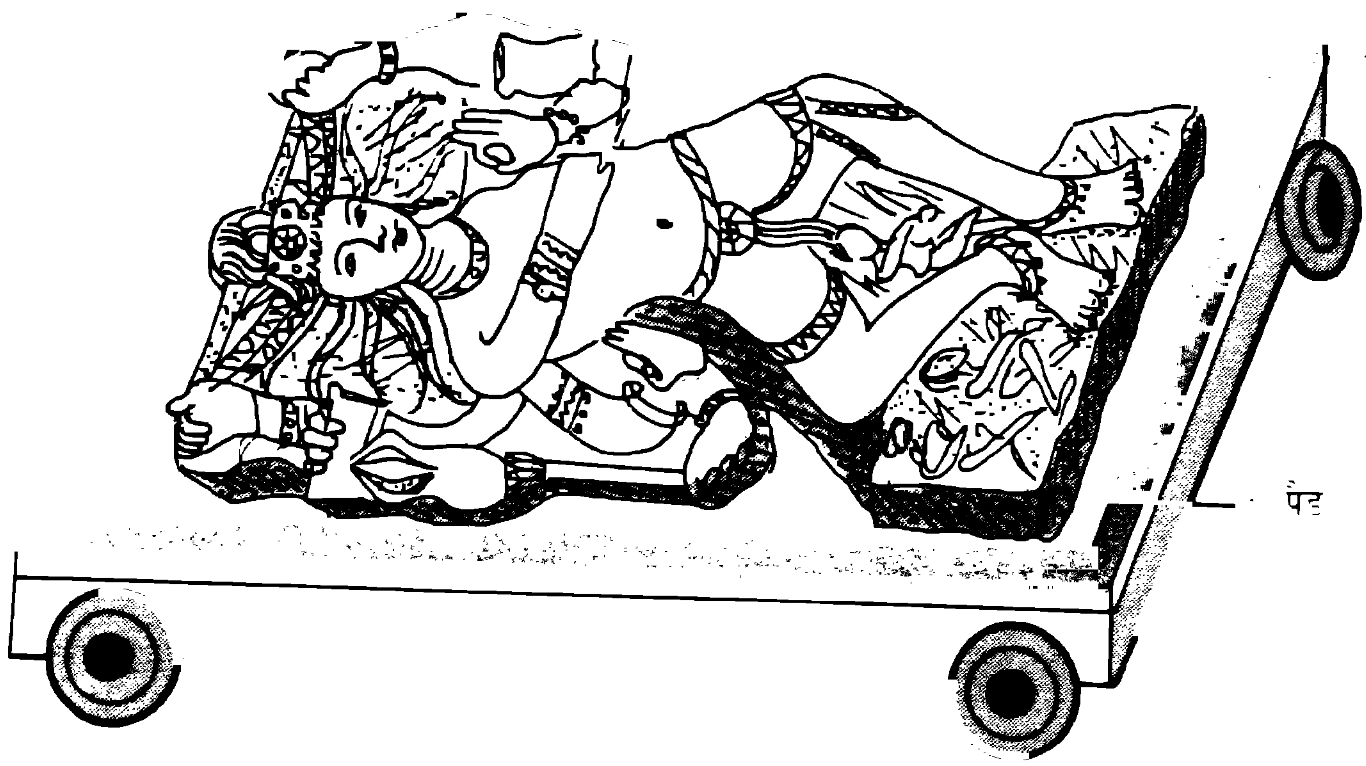
किसी सामग्री को, चाहे वह छोटी हो या बड़ी, एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते समय हमेशा ट्राली का प्रयोग करना चाहिए। सामग्री को ट्राली पर रखते समय, उसके ऊपर पैडों को अवश्य रखना चाहिए जिससे परिवहन के समय लगने वाले झटकों से सामग्री की रक्षा की जा सके (चित्र 9)। वजनदार वस्तुओं को चारों ओर से रस्सी से उठाने का पारंपरिक तरीका काफी खतरनाक हो सकता है (चित्र 10)। लंबे आकार की उस वस्तु को



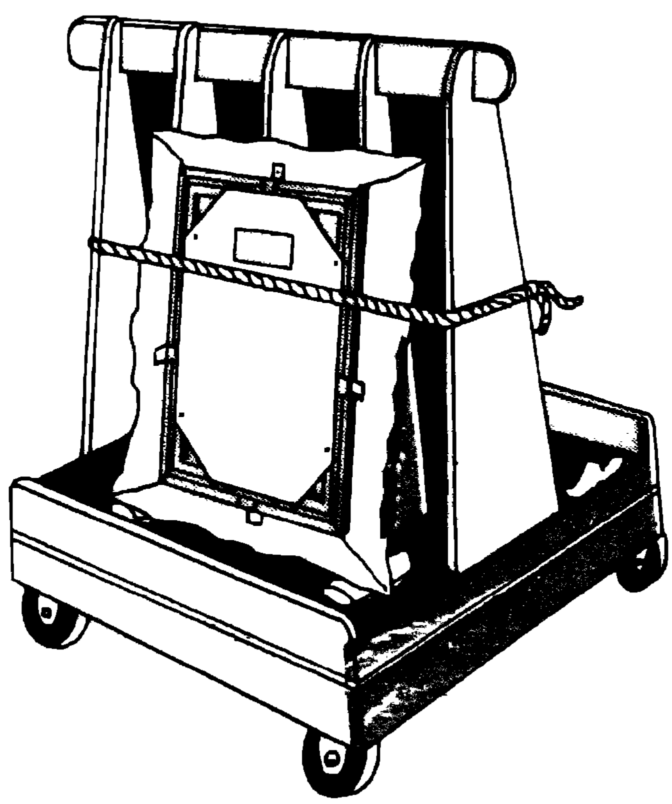
चित्र 9. एक वस्तु को एक स्थान से दूसरे पर ले जाने के लिए सदैव ट्राली का प्रयोग करें। परिवहन के समय वस्तु को लगने वाले झटकों से उनकी रक्षा के लिए ट्राली में पैडों को रखा जाना चाहिए।



चित्र 10. भारी वस्तुओं को रस्सी से बांधकर स्थानांतरित करने का पारंपरिक तरीका बहुत ही खतरनाक सिद्ध हो सकता है।

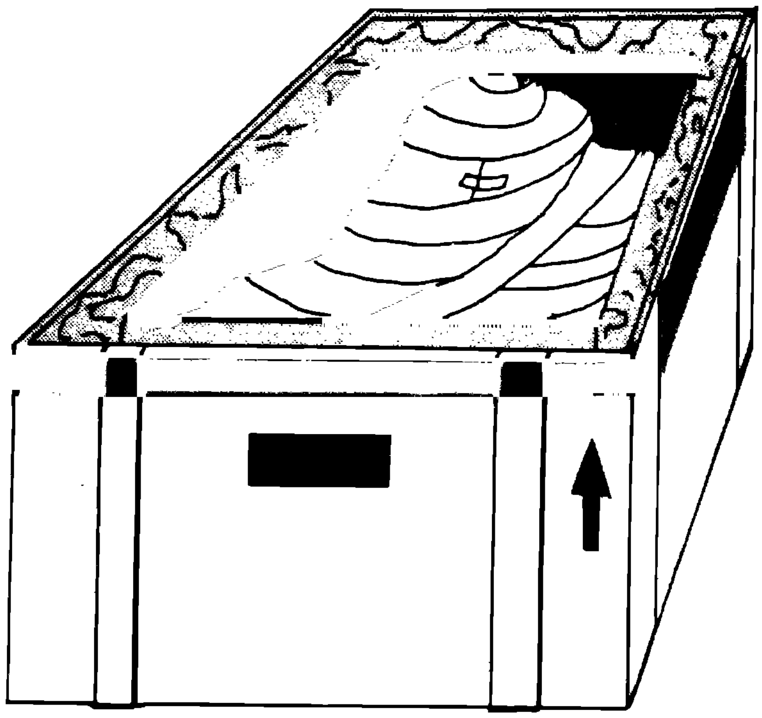


चित्र 11. लंबे आकार की वस्तु, जिसका आधार छोटा हो, को ट्राली में कभी खड़ा करके नहीं ले जाना चाहिए। ट्राली के नीचे गद्दीदार धरातल बनाकर वस्तु को उसके ऊपर लिटाना चाहिए।



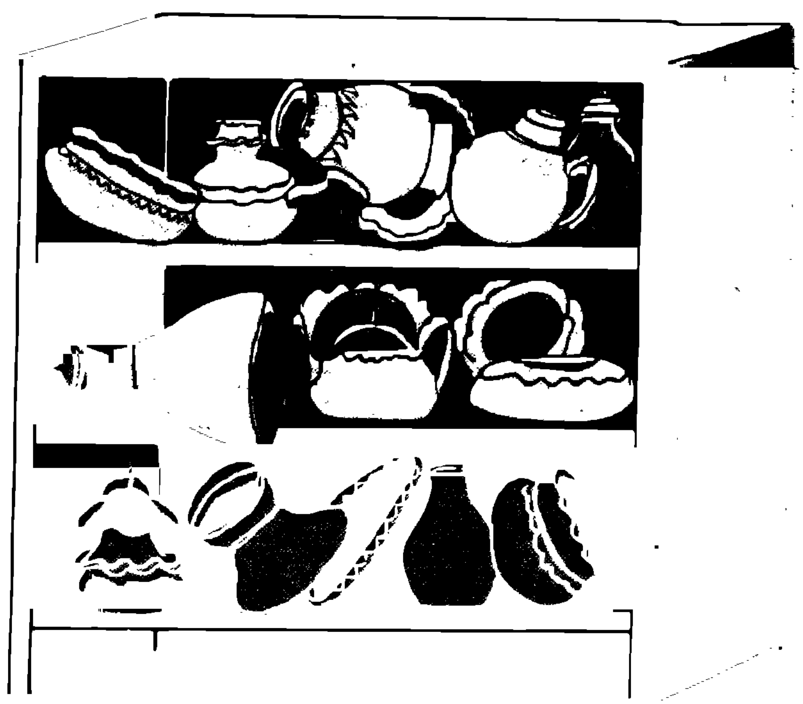
चित्र 12. बड़ी पेंटिंग के परिवहन हेतु बनी गद्दीदार ट्राली।

जिसका आधार भाग छोटा हो, ट्राली में कभी भी खड़ा करके नहीं रखना चाहिए (चित्र 11)। उस वस्तु को ट्राली में लिटा कर रखना चाहिए, नहीं तो उसके गिरकर क्षतिग्रस्त होने का खतरा बना रहता है। विशाल आकार की पेंटिंग ट्राली

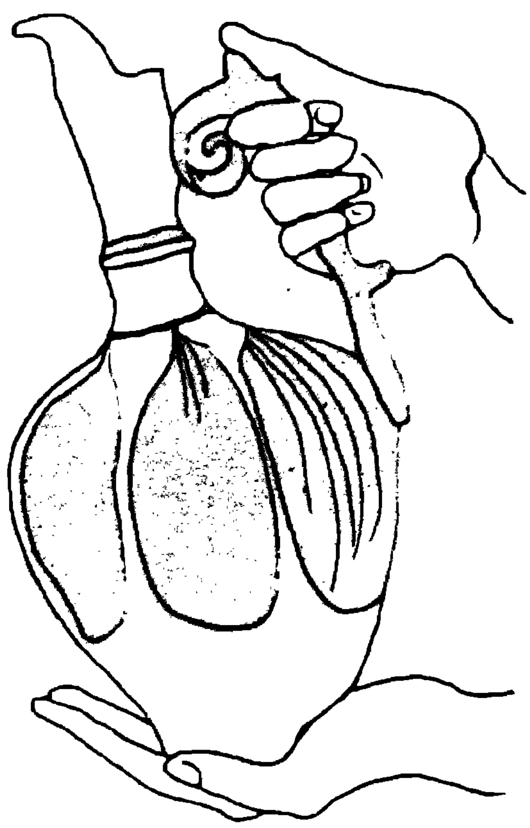


चित्र 13. वस्तुओं को स्थानांतरित करते समय चारों ओर से प्रचुर मात्रा में लचीली सामग्री से लपेटना चाहिए।

में गद्दीदार धरातल बनाकर, उसके ऊपर रखकर ले जानी चाहिए (चित्र 12)। यदि ट्राली उपलब्ध नहीं है तो दो व्यक्तियों को एक आगे और दूसरा पीछे रहकर पेंटिंग को पकड़कर ले जाना चाहिए। पेंटिंग को नीचे गिरने से बचाने के लिए एक हाथ को पेंटिंग के फ्रेम के नीचे और दूसरे को फ्रेम के ऊपर रखना चाहिए।



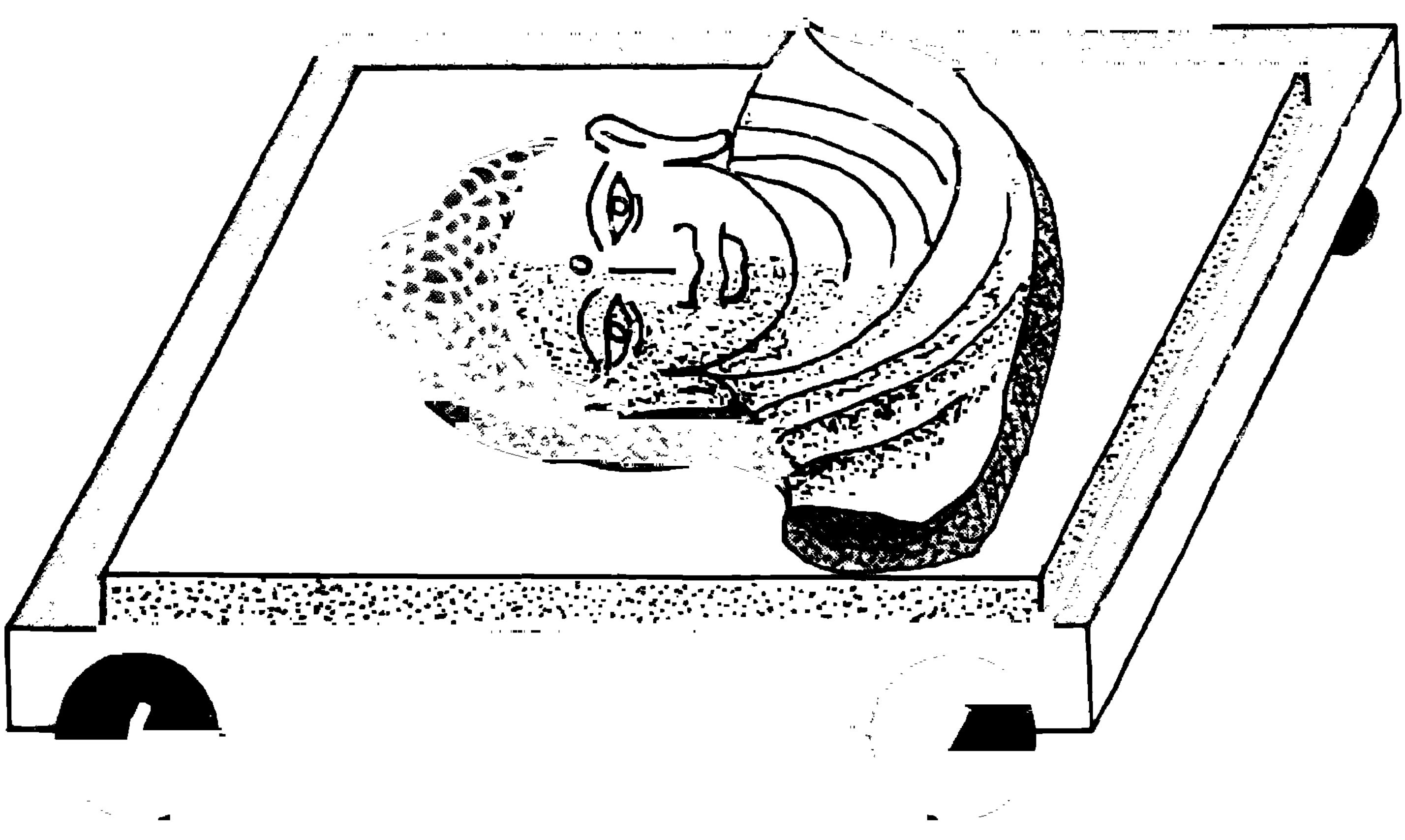
चित्र 14. कलाकृतियों को रखने का गलत तरीका। धातु के पात्रों को भी यदि एक दूसरे के ऊपर रखा जाता है तो उन पर रगड़ के निशान बन जाते हैं।



चित्र 15. वस्तु को उसकी गर्दन या हैडल से कभी नहीं उठाया जाना चाहिए।

वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाते ले जाते समय उन वस्तुओं के नीचे काफी मात्रा में टिशू कागज के समान गद्दीदार लचीली सामग्री अवश्य रखी जानी चाहिए (चित्र 13)। उनके नीचे रूई रखना उचित नहीं है क्योंकि रूई सामग्री के साथ चिपक जाती है जिसे हटाते समय सामग्री को हानि पहुंच सकती है। वस्तुओं को एक दूसरे के निकट या एक दूसरे के ऊपर (चित्र 14) नहीं रखना चाहिए। ऐसा करने से वस्तुओं पर रगड़ के निशान पड़ सकते हैं और यहां तक कि वे टूट भी सकती हैं।

जिस ट्राली द्वारा कला-सामग्री को ले जाया जा रहा हो, उसे बहुत धीरे-धीरे ले जाना चाहिए जिससे सामग्री को झटके न लगें। विशाल मूर्तियों आदि जैसी भारी सामग्रियों को ट्राली पर रखने के लिए अनेक व्यक्ति उपलब्ध होने चाहिए। वस्तु को उसकी गर्दन या ऊपरी किनारों से कभी



चित्र 16. वस्तु के धरातल के नीचे मुलायम गद्दीदार सामग्री रखनी चाहिए।

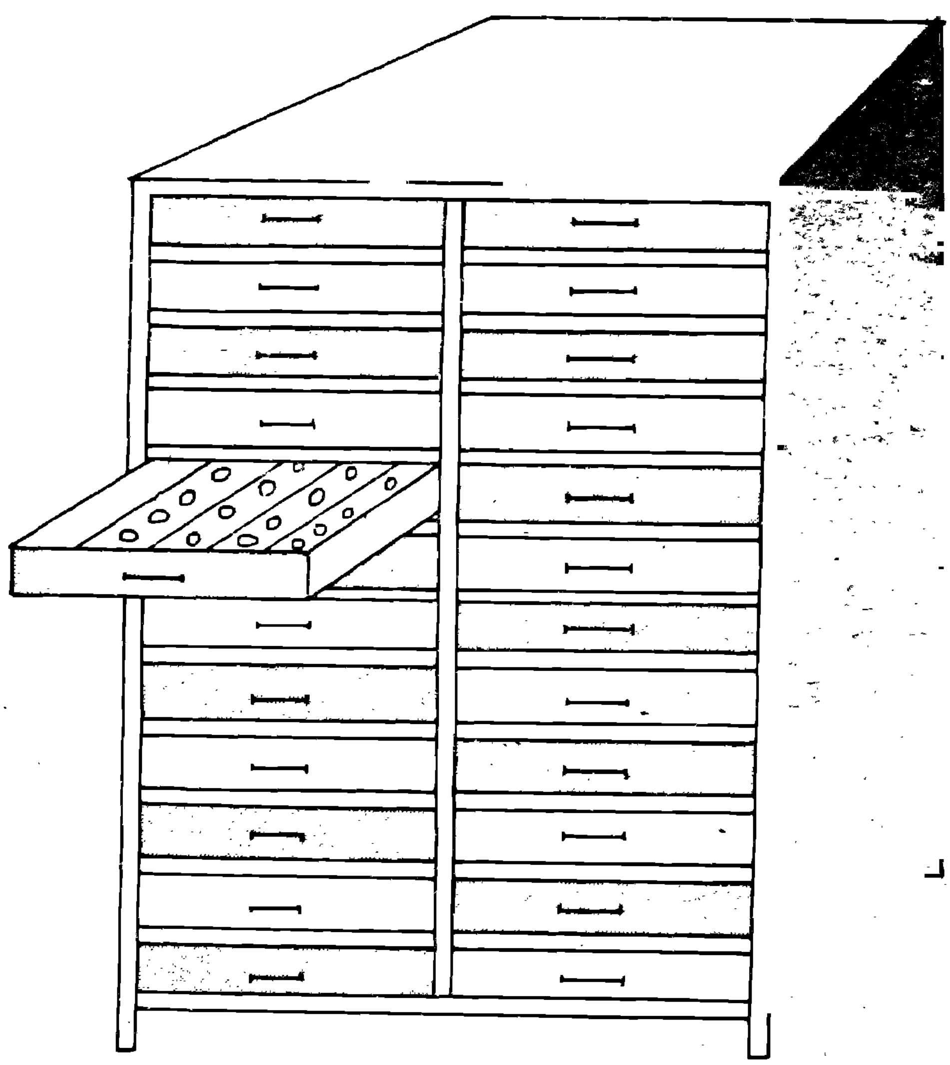
भी नहीं उठाना चाहिए क्योंकि ये भाग काफी कमजोर हो सकते हैं। इसलिए यह भाग वस्तु से अलग भी हो सकता है जिसके कारण वह टूटकर नीचे भी गिर सकती है। वस्तु को सहारा देने के लिए उसकी तली में हाथ को अवश्य रखना चाहिए (चित्र 15)। इसी प्रकार वस्तु को उठाते या ले जाते समय उसके नाजुक भागों, जैसे बाजुओं, हैंडलों या सिर से पकड़कर नहीं उठाना चाहिए। ऐसा करने से प्रायः दुर्घटनाएं हो चुकी हैं।

समस्त कला-वस्तुओं को शैल्फ या मेज के ऊपर रखते समय उनके नीचे गद्देदार लचीले पैड रखने चाहिए (चित्र 16)।

भंडारण

वस्तुओं के परिरक्षण के लिए उचित भंडारण अत्यावश्यक है। यदि वस्तुओं का भंडारण उचित रीति से नहीं किया जाता है तो वातावरण नियंत्रण, प्रकाश व्यवस्था आदि समस्त प्रयास व्यर्थ सिद्ध होते हैं।

श्रेष्ठ भंडारण व्यवस्था के लिए पहला कदम उसकी योजना है, जो मूलतः



चित्र 17. सिक्कों को रखने की कैबिनेट।

संग्रह की जाने वाली वस्तुओं के प्रकार पर निर्भर करती है। द्विविमीय वस्तुओं जैसे प्रिंटों, आरेखणों, वस्त्रों के नमूनों आदि के भंडारण की प्रविधि समान है। दूसरे प्रकार की वस्तुओं में त्रिविमीय वस्तुएं आती हैं जो अलग-अलग माध्यमों से बनी होती हैं और विभिन्न आकृतियों की होती हैं। तथापि, किसी भंडारण स्थल की प्रयोजना का मूल सिद्धांत है वहां पर संग्रहित समस्त वस्तुओं के अपघटन के विभिन्न कारकों, जैसे मौसम, प्रकाश, कीटों इत्यादि से वस्तुओं की रक्षा करना। सिक्कों को सुरक्षित रखने के लिए विशेष प्रकार के कैबिनेट बनाए जा सकते हैं, जिनकी दराजों में सिक्कों को रखने के लिए विशेष प्रकार के खांचे बनाए जाते हैं (चित्र 17)। हल्की वस्तुओं, जैसे चटाइयां और टोकरियां जिनके लिए वायु का संचार होना आवश्यक है, को प्लास्टिक के जालीदार खानों में रखा जा सकता है। आरेखणों और चित्रों को बक्सों में सुरक्षित रीति से रखा जा सकता है और प्रदर्शन के दौरान उन्हें कैबिनेट में रखते हैं। चित्रों और लकड़ी की छोटे आकार की लटकाई जाने वाली कला-वस्तुओं को जालीदार पर्दों से ढंक कर रखना चाहिए।

भंडारघर में रखी हुई इन वस्तुओं का नियमित रूप से निरीक्षण किया जाना चाहिए। यदि उनमें कोई हानिकारक प्रभाव दिखाई दे तो उस ओर तुरंत ध्यान देना चाहिए। यदि वस्तुओं के रंगों में परिवर्तन हो रहा हो अथवा वे भंगुरता की स्थिति की ओर जा रही हों तो उन पर विशेष ध्यान देना चाहिए। वस्तुओं पर कवक के प्रकोप, कीटों से उत्पन्न हानिकारक प्रभाव, संक्षारण तथा पेंट की पपड़ी निकलना इत्यादि, इन समस्त हानिकारक प्रभावों की विशेष रूप से मानीटरिंग करके उपचार के आवश्यक कदम उठाए जाने चाहिए।

जिन स्थानों में उपचार कार्य चल रहा हो, वहां पर खाद्य सामग्रियों को रखने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए ताकि अनायास ही तेल के धब्बे आदि उन कला-वस्तुओं पर न लगें। जिन स्थानों में वस्तुएं संग्रह या प्रदर्शन हेतु रखी गई हैं, उन स्थानों को अग्निकांड से बचाने के लिए वहां धूम्रपान निषिद्ध किया जाना चाहिए।



7

अग्नि

कला-वस्तुओं का विनाश करने वाला दूसरा अत्यंत महत्वपूर्ण विध्वंसक कारण अग्नि है। कला-वस्तुएं चाहे अजैविक पदार्थों जैसे पाषाण, सिरेमिक तथा धातु या जैविक पदार्थों जैसे काष्ठ, कागज तथा वस्त्र से बनी हों, अग्नि के प्रति संवेदनशील होती हैं। जैव पदार्थों से बनी हुई वस्तुएं तो इतनी अधिक संवेदनशील होती हैं कि अग्नि उन्हें कुछ ही क्षणों में राख कर देती है। पाषाण और सिरेमिक की वस्तुएं टूट जाती हैं और धातु की प्रतिमाएं पिघल जाती हैं। कुछ पुस्तकालय अपनी संपूर्ण सामग्री सहित जलकर खाक हो गए, क्योंकि पहले से आग बुझाने के उपाय नहीं किए गए थे। अतः सुरक्षा के उपाय पहले से किए जाने अनिवार्य हैं।

अग्निकांड से सुरक्षा के लिए दो प्रकार की युक्तियां हो सकती हैं—निष्क्रिय युक्तियां और सक्रिय युक्तियां। निष्क्रिय प्रकार की युक्तियों के अंतर्गत वे कदम आते हैं जिनमें अग्निकांड के प्रारंभ होने पर उसे बुझाने के लिए आवश्यक सुविधाएं प्रदान करना होता है। इसके लिए भवन-योजना इस प्रकार की जानी चाहिए कि आग बुझाने के आवश्यक उपकरण पहले से ही लगे हुए हों। यह भी देखना चाहिए कि भवनों के दरवाजों की योजना ऐसी बनाई जाए कि आग एक कमरे से दूसरे में सरलता से न फैले और उसी कमरे तक सीमित रहे जहां से अग्नि शुरू हुई थी। निकास-द्वार की भी योजना इस प्रकार से की जानी चाहिए कि अग्निकांड होने की स्थिति में संग्रहालय के कर्मचारियों और दर्शकों को तुरंत बाहर निकाला जा सके। यह भी आवश्यक है कि ऐसे संकट के समय नलों में जल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रहे। उन वीथिकाओं अथवा कक्षों में जहां कला-

वस्तुएं संग्रहित हैं वहां पर विस्फोटक और वाष्पशील रसायनों को नहीं रखना चाहिए।

संग्रहालयों, पुस्तकालयों, कला-वीथिकाओं अथवा निजी संग्रहों को विद्युत से उत्पन्न अग्निकांड के संभावित खतरों से बचाने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि भवन की वैद्युत व्यवस्था उत्कृष्ट हो। पर्दों, वस्त्रों, कमरों के फर्नीचर और मंजूषा की लाइनिंगों में अग्निरोधी सामग्री का प्रयोग किया जाना चाहिए। नियमित रूप से बिजली की तारों और स्पॉट-लाइटों की जांच होनी चाहिए क्योंकि उच्च-तापमान के कारण इन सामग्रियों की विद्युत रोधन क्षमता कुछ अवधि के बाद कम होने लगती है।

भवन और उसके आसपास के क्षेत्रों में पैकिंग केसों, पैडिंग, प्रयोग न लाया जाने वाला बेकार फर्नीचर तथा कागज और इसी प्रकार की अन्य ज्वलनशील सामग्रियों या कूड़े-करकट को इकट्ठा नहीं होने देना चाहिए। प्रदर्शनी वीथिकाओं, संग्रह-स्थलों और उन स्थानों में जहां पर सामग्रियों की पैकिंग होती है और यहां तक कि उन कक्षों में जहां कला-सामग्रियां रखी हुई हैं, धूम्रपान वर्जित होना चाहिए। उन संरक्षण-प्रयोगशालाओं में जहां सामान्यतः ज्वलनशील रसायन प्रयोग में लाए जाते हैं, आग की रोकथाम की विशेष व्यवस्था की जानी चाहिए।

संसूचना

अग्निकांड की सूचना प्राप्त होने पर पहला कार्य उसको बुझाना है। आजकल आटोमैटिक अलार्म बाजार में उपलब्ध हैं जो अग्निकांड की प्रारंभिक अवस्था में ही उसका पता लगाकर सूचित कर देते हैं।

संसूचक अनेक प्रकार के होते हैं, जैसे ऊष्मा संसूचक, धूम्र संसूचक, ज्वाला संसूचक, ऊर्जा संसूचक और लेसर किरण संसूचक । इनमें लेसर किरण संसूचक बहुत ही संवेदनशील होते हैं जो 100 मीटर की दूरी से ही अग्निकांड का पता लगाने में सक्षम होते हैं। ये ऊष्मा और धुएं के प्रति संवेदनशील होते हैं, इसीलिए ये अत्यंत प्रभावी होते हैं। स्वचालित जल स्प्रिंक्लर उपकरण तापमान के एक निश्चित स्तर पर पहुंचने के उपरांत अग्निकांड का आभास दे देता है, तथा इसे वाणिज्यिक भंडारण क्षेत्रों में काम में लाया जाता है। इस संबंध में जिस प्रकार की भी व्यवस्था की जाए, उसके लिए यह आवश्यक है कि अलार्म व्यवस्था ठीक से काम कर रही है अथवा नहीं, इसकी नियमित रूप से जांच की जानी चाहिए जिससे संकट-काल में यह अपना कार्य ठीक से कर सके।

अग्निशमन

अग्निकांड का पता चलते ही आग को बुझाने के लिए तत्काल अग्निशमन दल की सहायता ली जानी चाहिए। तथापि, अग्निशमन दल को उन तरीकों का प्रयोग करने से रोकना चाहिए जो संग्रहों के लिए हानिकारक हों। उदाहरणार्थ, जिन वीथिकाओं में चित्रों और पांडुलिपियों को संग्रहित किया गया है, वहां पर बहुत अधिक मात्रा में जल का प्रयोग करने से इन संग्रहों को हानि पहुंच सकती है। मुख्यतया बड़े शहरों में, जहां पर अग्निशमन दस्ते की सुविधाएं उपलब्ध हैं, विभिन्न प्रकार के अग्निशमन उपकरणों की थोड़ी बहुत जानकारी संग्रहालय के अधिकारियों को होनी चाहिए।

अग्नि को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया है :

- क श्रेणी की अग्नि : यह सामान्य ज्वलनशील सामग्री जैसे काष्ठ, कागज तथा वस्त्र इत्यादि से संबंधित है।
- ख श्रेणी की अग्नि : यह ज्वलनशील तरल पदार्थ जैसे, तैल, ग्रीज इत्यादि से संबंधित है।
- ग श्रेणी की अग्नि : यह वैद्युत व्यवस्थाओं से उत्पन्न होती है।

प्रत्येक प्रकार के अग्निकांड से रक्षा के लिए विशेष प्रकार के अग्निशमन उपकरणों का निर्माण किया गया है। निम्न प्रकार के अग्निशमन उपकरण आजकल उपलब्ध हैं :

- ***फोम प्रकार*** के उपकरण में एक मोटा फोम (झाग) होता है जो अग्नि क्षेत्र को ढंक लेता है और इससे अग्नि में आक्सीजन की मात्रा नहीं पहुंच पाती। पर इस प्रकार के उपकरण अग्निकांड के समय तब अधिक प्रभावी सिद्ध नहीं होते जब वे तैलीय पदार्थों या वैद्युत व्यवस्थाओं के कारण लगते हैं (ख और ग वर्ग के अग्निकांड)।
- ***सोडा एसिड श्रेणी*** के अग्निशमन में सोडा में एसिड के प्रभाव से जल के अंदर दाब पैदा कर पानी की तीव्र धारा को प्रवाहित किया जाता है। इस प्रविधि को ख और ग के अग्निकांडों में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता।
- ***सी.टी.सी. श्रेणी*** के अग्निशमन उपकरणों में कार्बन टेट्राक्लोराइड का प्रयोग किया जाता है जो अग्नि की ऊष्णता से गैस में वाष्पित हो जाती है। इन्हें क, ख और ग श्रेणी के अग्निकांडों में प्रयुक्त किया जा सकता है। यद्यपि कार्बन ट्रेटाक्लोराइड गैस विषैली होती है, अतः इसका प्रयोग

करने की बहुत कम सिफारिश की जाती है।

- ***कार्बन डाइआक्साइड श्रेणी*** के अग्निशमन उपकरण हर प्रकार के अग्निकांडों के लिए लाभदायक हैं।
- ***शुष्क रासायनिक श्रेणी*** के उपकरणों में शुष्क रसायनों का प्रयोग किया जाता है जो बाइकार्बोनेट पर आधारित नहीं होते हैं। इन्हें क, ख, ग श्रेणियों के अग्निकांडों में समान कुशलता से प्रयोग किया जा सकता है।
- ***हेलोजिनीकृत हाइड्रोकार्बन*** अग्निशमन उपकरणों का आजकल बहुत प्रयोग किया जा रहा है और ये उपकरण अत्यधिक प्रभावी हैं।

अग्निशमन उपकरणों को हमेशा विशिष्ट स्थलों पर ही रखा जाना चाहिए। उपकरणों के निर्माताओं द्वारा निर्धारित तिथियों पर समय-समय पर उन्हें चार्ज करना अत्यावश्यक है क्योंकि उसके अंदर के रसायन अनिश्चित काल तक प्रभावी नहीं होते।

भाग-2



8
पाषाण वस्तुएं

संग्रहालयों, देवालयों, गिरजाघरों, निजी संग्रहों में रखी हुई अधिकतर सामग्रियां पत्थर की बनी हुई हैं। कलात्मक सामग्री, औजार और रोजमर्रा के प्रयोग में लाई जाने वाली समस्त वस्तुओं को सर्वप्रथम पाषाण से बनाया गया होगा। भारत में, जहां धर्म में मूर्तिपूजा जीवन का एक अंग माना गया है वहां यह स्वाभाविक ही है कि पाषाण मूर्तियां और प्रतिमाएं बहुतायत में प्राप्त हों। इनमें से कुछ मूर्तियां अत्यंत विशाल हैं जिसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण कर्नाटक में, श्रावणबेलगोला की बाहुबली की प्रसिद्ध विशाल मूर्ति है। प्रायः छोटे आकार की मूर्तियां देवालयों और भारत भर के अनेक निजी संग्रहों में प्राप्त होती हैं।

पाषाण देवालयों, राजप्रासादों और अन्य भवनों के निर्माण का यह एक लोकप्रिय माध्यम रहा है। इन्हें प्रायः बहुत ही बारीकी से उकेरा जाता था, इसीलिए वास्तुकलात्मक सामग्रियां अधिकतर पाषाण में प्राप्त होती हैं। भारत के अधिकतर संग्रहालय पुरातात्विक हैं। यही कारण है कि यहां के अधिकतर संग्रहालयों में शिल्प-वस्तुओं, प्रतिमाओं, और उपकरणों की बहुतायत है। ऐसा ही हमें दक्षिण-पूर्वी एशिया के अधिकतर संग्रहालयों में देखने को मिलता है। पाषाण मूर्तियां, उकेरे गये चित्र तथा वास्तुकलात्मक खंड अनेक निजी संग्रहों, देवालयों इत्यादि में देखने को मिलते हैं।

पाषाण के प्रकार

भूविज्ञान की दृष्टि से पाषाण के तीन प्रकार हैं—आग्नेय या ज्वालामुखीय, कायांतरी तथा अवसादी। आग्नेय चट्टानें जैसे ग्रेनाइट ज्वालामुखी लावे के शीतल होने से

निर्मित हुईं। अवसादी चट्टानों जैसे बालुकाश्म और चूना पत्थर का निर्माण बालू और दूसरे जड़ पदार्थों से होता है जिन्हें नदियां अपने साथ लाती हैं और झील और तालाबों की तलहटी में जमा कर देती हैं। काफी समय के बाद ये पर्तें अश्मीभूत होकर प्रस्तर का आकार ले लेती हैं। कायांतरी चट्टानें, उदाहरणार्थ संगमरमर आग्नेय या अवसादी शैल के कायांतरण से अपना नवीन रूप दाब, ऊष्मा अथवा किसी भूवैज्ञानिक परिवर्तन से प्राप्त करती हैं। इन सबमें आग्नेय चट्टानें सबसे स्थायी और कठोर होती हैं। अवसादी चट्टानों की पर्तों में टूट जाने की प्रकृति होती है। यदि इनके कणों का पारस्परिक बंधन कमजोर हो तो ये छोटे-छोटे खंडों में विघटित होने लगती हैं। कायांतरी चट्टानें मध्यम दर्जे की टिकाऊ होती हैं।

इसके अलावा एक अन्य प्रकार की चट्टानें भी होती हैं जैसे लैटेराइट जो अत्यधिक छिद्रयुक्त होती हैं। इन चट्टानों पर जल के अंतःस्राव का अत्यधिक शीघ्रता से प्रभाव पड़ता है।

पाषाण का परिरक्षण

कभी-कभी पाषाण से निर्मित वस्तुएं जैसे मूर्तियां तथा उपकरण अपने आप विघटित होने लगते हैं और उनकी अनेकानेक पर्तें अलग होने लगती हैं। ये वस्तुएं बहुत लंबे समय तक प्रयोगशाला में उपचारित होने के बाद ही पूर्णतया निर्दोष स्थिति में पहुंच पाती हैं (प्लेट 11)।

कुछ पाषाण की वस्तुओं के एक बड़े भाग को सूक्ष्म जीवों की परत ढंक लेती है। इसके फलस्वरूप जो पाषाण के धरातल के नीचे उत्कीर्ण आकृतियां बनी होती हैं वे छिप जाती हैं। इस प्रकार के मामलों में भी बहुत लंबे समय तक प्रयोगशाला में उनका उपचार करने से सूक्ष्म जीवों को पाषाण की सतह से हटाया जा सकता है।

इन दृष्टांतों से स्पष्ट है कि यद्यपि पाषाण एक मजबूत और सुदृढ़ माध्यम है, पर इसका भी ह्रास होता है। अतएव इसकी भी अन्य कला-वस्तुओं की भांति देखभाल करने की आवश्यकता होती है।

पाषाण से बनी वस्तुओं की अत्यधिक हानि उसमें उपस्थित घुलनशील लवणों से होती है। लवण नमी को ग्रहण करके विलायकों का रूप दे देते हैं और चट्टानों के कोटरों के बीच में स्थान बना लेते हैं। वाष्पीकरण में लवण के विलायक लवण क्रिस्टलों में परिवर्तित हो जाते हैं जो प्रायः पाषाण की सतह पर सफेद क्रिस्टलों का आकार ले लेते हैं। लवणों के अनवरत विलयन और क्रिस्टलीकरण से पाषाण बार-बार प्रभावित होते हैं और अंततः पाषाण की सतह पाउडर में परिवर्तित होने

लगती है। अतः सावधानी के लिए समस्त पाषाण सामग्रियों को उत्खनन के बाद तुरंत लवणहीन जल से बार-बार धो लेना चाहिए जिससे सामग्रियों में विद्यमान लवण की मात्रा पूरी तरह निकल जाए। लवण से प्रभावित प्रस्तर के उपचार का सबसे प्रभावी तरीका कागज-लुगदी प्रविधि है। इस प्रविधि में, कागज की लुगदी को सारी रात पानी में भिगोकर रखा जाता है और इसके बाद उस गीली लुगदी को वस्तु के चारों ओर थोपकर सूखने के लिए छोड़ दिया जाता है। लुगदी के सूखने की प्रक्रिया में लुगदी उसमें व्याप्त लवण को प्रस्तर से बाहर खींच लेती है। जब लुगदी पूरी तरह सूख जाती है तो उसे वस्तु से अलग कर देते हैं। लवण की मात्रा, पाषाण से पूर्णतया निकल गई है, इसे सुनिश्चित करने के लिए परीक्षण कर लिया जाता है। फिर भी यदि पाषाण में लवण की उपस्थिति के संकेत मिलते हैं तो इस प्रक्रिया को फिर से दोहराया जाता है और इसे तब तक बार-बार दोहराया जाता है जब तक लवण की मात्रा वस्तु से पूरी तरह समाप्त नहीं हो जाती।

यदि पाषाण की सतह कमजोर या पाउडरी हो जाती है तो संयोजी घोलों का प्रयोग पाषाण में उपस्थित समस्त लवण की मात्रा को निकाल लेने के बाद किया जाता है। बालू-पत्थर और मूर्तियों में मुख्यतया परतों का पार्थक्य देखने को मिलता है (प्लेट 11)। प्रयोगशाला विशेषज्ञों की राय लेने पर वे पाषाण की परतों को परस्पर समेकित करने के लिए रेजिन या अन्य विलयनों के प्रयोग को महत्व देते हैं।

पाषाण से बने भवनों और वस्तुओं में नमी बढ़ने का मुख्य कारण है कि वे धरातल से जुड़े रहते हैं और पृथ्वी के भीतर जल का स्तर बढ़ने के कारण जल वस्तु के धरातल तक पाषाण में विद्यमान छिद्रों में पहुंच जाता है। इसलिए पाषाण की वस्तुओं को भूतल या सीमेंट के चबूतरों पर प्रदर्शन के लिए नहीं रखना चाहिए। पाषाण की मूर्तियों को पाषाण या ईंटों से बने चबूतरे में तभी रखना चाहिए जब नमी को रोकने वाली प्लास्टिक की चादरों को चबूतरों के ऊपर बिछा दिया जाए।

प्रायः पाषाण की मूर्तियों में मुख्यतया धूल और मिट्टी जमा हो जाती है और उसमें धब्बे पड़ जाते हैं। धूल को बड़ी सरलता से निकाला जा सकता है। प्रायः साधारण जल से अलग-अलग प्रकार की धूल को वस्तु पर से हटाया जा सकता है। कभी-कभी हल्के डिटरजेंट का इस्तेमाल किया जा सकता है। जरा-सा भी अम्ल-चाहे उसे कितना भी पतला क्यों न किया गया हो का प्रयोग पाषाण को साफ करने के लिए नहीं किया जाना चाहिए। ऐसा केवल उसी स्थिति में किया जाना चाहिए जब किसी प्रशिक्षित संरक्षणविद्, जिसे इसका ज्ञान हो कि

विभिन्न प्रकार के पाषाणों पर इसके प्रयोग का क्या प्रभाव पड़ेगा, का सुझाव प्राप्त कर लिया जाये। चिकनाई के धब्बों, तेल की पर्तों, पेंट तथा मोम इत्यादि जो पाषाण में लगे हुए हों, उन्हें पाषाण से हटाने के लिए उपयुक्त प्रकार के कार्बनिक विलायकों जैसे टोल्यून, एसिटोन, ट्राइक्लोरोएथिलीन, ट्राइएथेनॉलैमीन इत्यादि या इनके मिश्रणों का प्रयोग किया जा सकता है।

पाषाण की वे वस्तुएं जो कुछ समय तक खुले स्थानों में पड़ी रहती हैं उन पर काई, शैवाल लग जाती है। ये पाषाण की आकृति को बदरंग ही नहीं बना देती हैं वरन् उसके धरातल को चकत्तेदार, हरा और काला रूप दे देती हैं, जिसके कारण पाषाण के धरातल में गड्ढे पड़ जाते हैं तथा पाषाण की संरचना कमजोर पड़ जाती है। एक प्रशिक्षित संरक्षक को काई के संचय को हटाने में सक्षम होना चाहिए। यह कार्य अपने आप नहीं करना चाहिए क्योंकि इसके लिए इस्तेमाल रसायनों का प्रयोग खतरनाक होता है।

शैवाल को हटाने के लिए प्रायः 5 से 10 प्रतिशत एमोनियम हाइड्रोक्साइड के घोल का प्रयोग किया जाता है। रूई के फाहे को घोल में भिगोकर और प्रभावित भाग पर 10 से 15 मिनट की अवधि तक रखने के बाद नारियल या नाइलोन के ब्रश से उसे साफ किया जाता है। इसके लिए धातु के तार से बने ब्रश अत्यंत हानिकारक सिद्ध हो सकते हैं और इनका कदापि प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। ये वस्तु की सतहों को छील देते हैं जिससे वस्तु पर खरोंचें पड़ जाती हैं।

कभी-कभी यह प्रश्न भी उठाया जाता है कि संरक्षण हेतु क्या पाषाण की सामग्रियों को किसी रेजिनी आलेपों से विलेपित किया जाना चाहिए ? सामान्यतया ऐसे किसी भी आलेप की सिफारिश नहीं की जाती है, जब तक कि किसी वस्तु की ढहती सतहों को बचाने के लिए विशेष स्थिति में इसका प्रयोग बहुत आवश्यक न हो।

पाषाण की मूर्तियों, स्तंभों तथा अन्य वस्तुओं का रखरखाव तथा भारी वजन के कारण उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाना ले जाना अन्य वस्तुओं की तुलना में अधिक कठिन कार्य है। भारी वस्तुओं को ट्राली में ले जाना चाहिए (चित्र 11) यद्यपि फोर्क लिफ्ट काफी महंगी होती है। इसकी बजाय मजबूत रस्सियों से वस्तु को चारों ओर से बांधकर चार या पांच व्यक्ति उठाकर उसे ट्राली में रख सकते हैं और वस्तु को खंभे में लटकाकर भी ले जाया जा सकता है। ऐसी स्थिति में यह बहुत ही आवश्यक है कि रस्सी और वस्तु के बीच में गद्दीदार पैड रखे हुए हों, नहीं तो रगड़ से वस्तु को हानि पहुंच सकती है। वस्तु को इधर-उधर ले जाते समय रस्सी और पाषाण की वस्तु के बीच में काफी अधिक मात्रा में

गद्दीदार सामग्री जैसे पुरानी साफ रजाइयों के टुकड़े या टाट के बोरों के गद्दे बनाकर रखने चाहिए (चित्र 10)।

पाषाण की वस्तुएं एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाते-ले जाते समय टूट सकती हैं या क्षतिग्रस्त हो सकती हैं, अतः उन्हें पैक करते समय अत्यधिक सावधानी बरतनी चाहिए। सबसे पहले, उन सारे क्रेटों को जिनमें वस्तुओं को पैक किया गया है काफी मजबूत होना चाहिए। क्रेटों के अंदर, वस्तुओं को रखते समय, वस्तु के चारों ओर काफी मात्रा में लोचदार सामग्री रखनी चाहिए जिससे वस्तुओं को लाते-ले जाते समय झटका और आघात न लगे। कभी-कभी बड़े आकार की प्रस्तर की वस्तुओं को पैक करते समय दो क्रेटों का प्रयोग किया जाता है, जिसमें बड़े क्रेट के अंदर, वस्तु के माप के बराबर एक छोटे आकार का क्रेट रख दिया जाता है (चित्र 12)। भीतरी क्रेट में रखी हुई वस्तु के चारों ओर गद्दीदार, लचीली सामग्री को बांध दिया जाता है तथा भीतरी और बाहरी क्रेट के बीच में काफी मात्र में लचीली सामग्री रखी जाती है। इस प्रकार, बाहरी क्रेट पर वस्तुओं को लाते-ले जाते समय जो झटका या आघात लगता है उसे लचीली गद्दियां आत्मसात कर लेती हैं और सामग्री पर झटके नहीं लगते। वस्तु को पैक करते समय उनकी बांहों, टांगों और दूसरे नाजुक अंगों की रक्षा के विशेष प्रबंध करने चाहिए।

दीवारों पर डिसटेंपर और पेंट करते समय, पाषाण की वस्तुओं पर उनके छींटे पड़ सकते हैं। ऐसी स्थिति में उन्हें पालिथीन या कपड़े की चादर से ढंक देना चाहिए। फिर भी यदि वस्तु पर रंग लग जाए तो उसे तत्काल जल या उचित विलायकों जैसे, जाइलीन, एसिटोन, मेथिलीन स्पिरिट, पेंट-रिमूवर लगाकर साफ कर लेना चाहिए। पेंट के सूख जाने के बाद उसे निकालना अधिक कठिन हो जाता है।

प्रायः पाषाण की वस्तुओं को भंडारण के समय उस समय क्षति पहुंचती है जब छोटे और बड़े आकार की वस्तुओं को साथ रख दिया जाता है। इससे कुछ वस्तुओं में रगड़ लग जाती है या वे टूट-फूट जाती हैं। इसके बचाव का सबसे श्रेष्ठ तरीका है कि वस्तुओं को अलग-अलग शैल्फों और चबूतरों पर काफी मात्रा में पैड रखकर रखा जाए। आधार इतना सुदृढ़ होना चाहिए कि मूर्तियों का भार वहन करने में समर्थ हो।

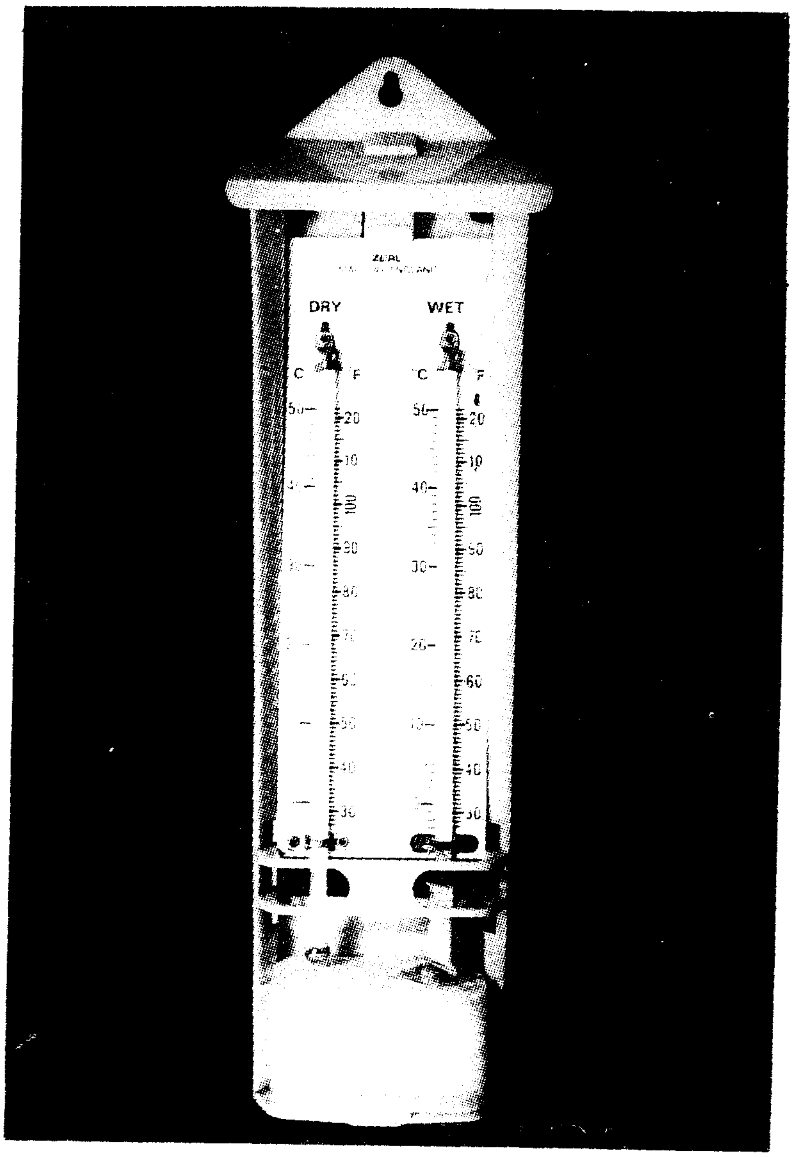


9

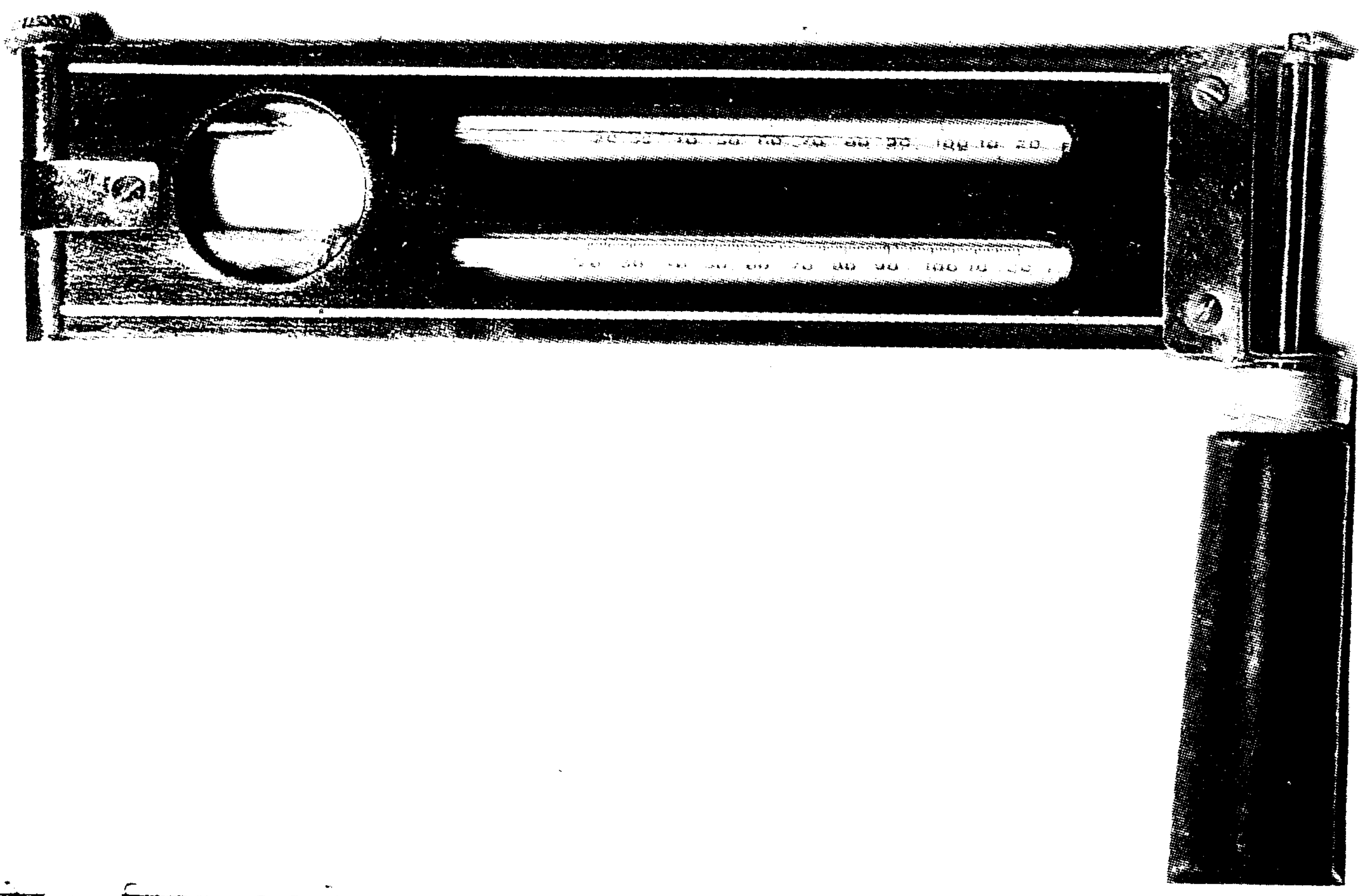
धातुएं

यद्यपि कार्बनिक सामग्रियों की तुलना में धातु की वस्तुएं अधिक टिकाऊ होती हैं, पर वे विघटन की प्रक्रिया से पूर्णतया मुक्त नहीं होती हैं। प्राचीन काल से सोना, चांदी, तांबा, लोहा, सीसा आदि मुख्य धातुओं तथा इससे बनी मिश्र धातुओं का प्रयोग होता था। सोना और चांदी के धातु मिश्रण को इलेक्ट्रम कहा जाता है और सोने की तरह इनका प्रयोग आभूषण, मणिका और सिक्के बनाने के काम में लाया जाता रहा है। यह सोने की तरह टिकाऊ होता है। भारत में 5000 वर्ष पूर्व, हड़प्पा सभ्यता के काल में आभूषणों के निर्माण के लिए सोने और चांदी का काफी प्रयोग होता था। इस काल में ताम्र और यहां तक कि ताम्र और टिन की मिश्रधातु, जिसे कांस्य कहा जाता है, का काफी प्रचलन था। यद्यपि लोहे का प्रयोग भारत में काफी बाद में 1000 ईसा पूर्व में होने के संकेत मिलते हैं। अतः, इसमें आश्चर्य नहीं कि इतिहास के विभिन्न कालों की धातु की वस्तुएं और अनेक उपकरण विभिन्न संग्रहालयों और निजी संग्रहों में उपलब्ध हैं।

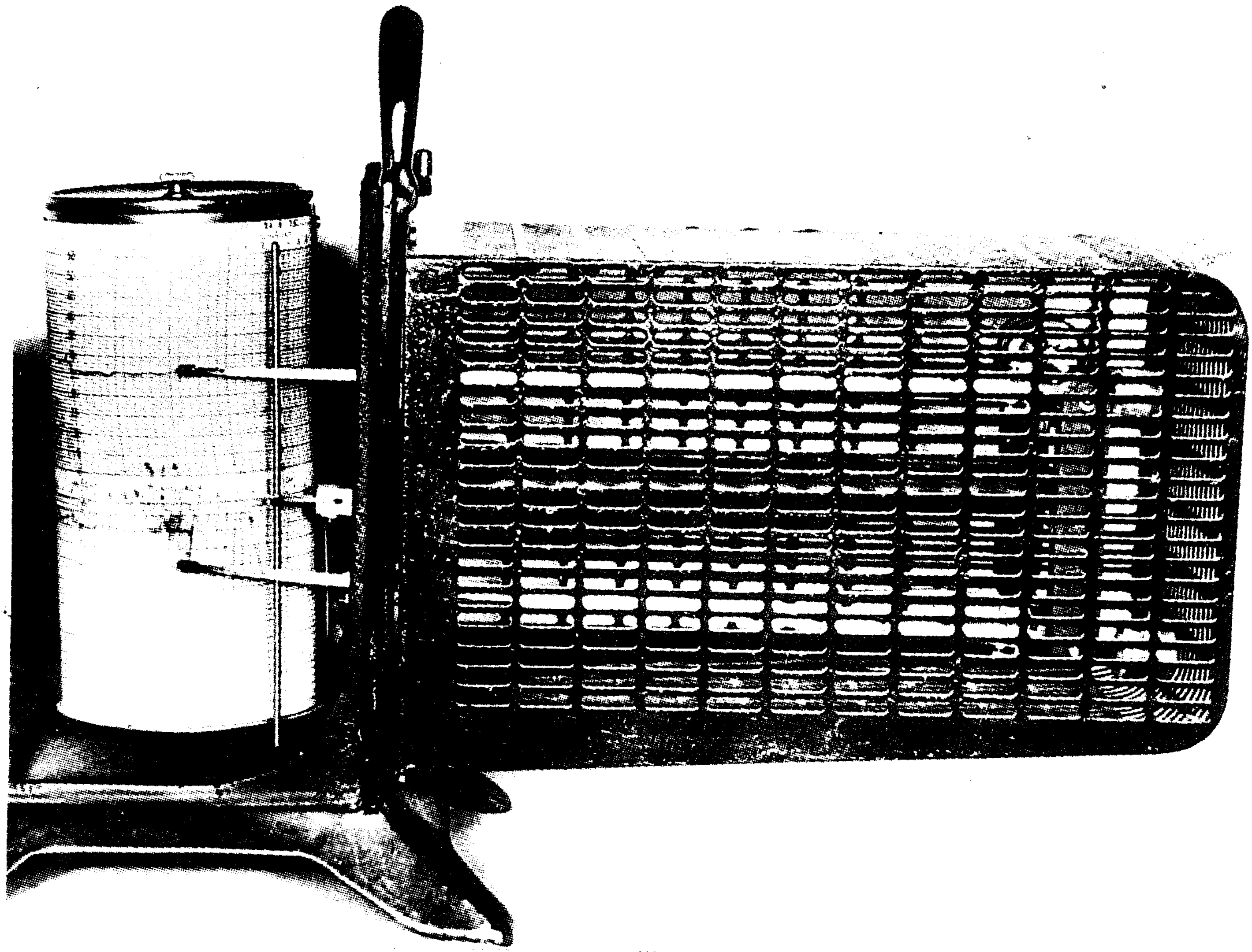
धातु की उन वस्तुओं को, जो अपक्षयण की विभिन्न अवस्थाओं में मिलती हैं, संरक्षण और उपचार के लिए प्रयोगशाला में भेजा जाता है (प्लेट 12)। समस्त धातु की वस्तुएं, सोने को छोड़कर, भूगर्भित अवस्था में संक्षारित होने लगती हैं। यही कारण है कि अधिकतर धातु की वस्तुएं जो आकस्मिक खुदाई में या पुरातात्विक उत्खननों में मिलती हैं, उनमें जंग लगा होता है या उनकी छटा हरे या नीले रंग की दिखती है। इन परिस्थितियों में इनकी शक्ति काफी क्षीण हो चुकी होती है और इन वस्तुओं को प्रयोगशाला में उपचार कर सुदृढ़ बनाया जा सकता है।



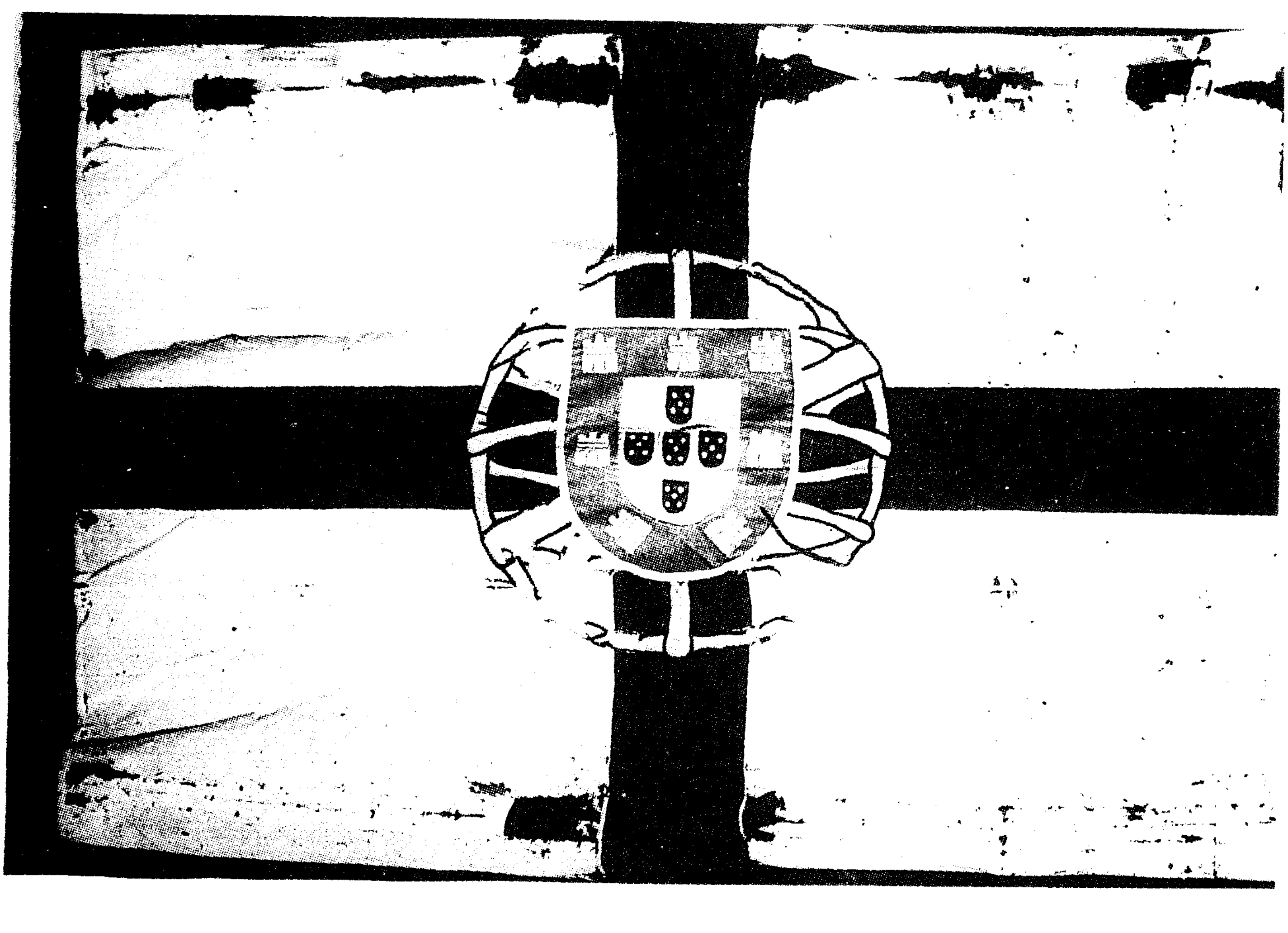
प्लेट 1. आर्द्र और शुष्क बल्ब
धर्मामीटर।



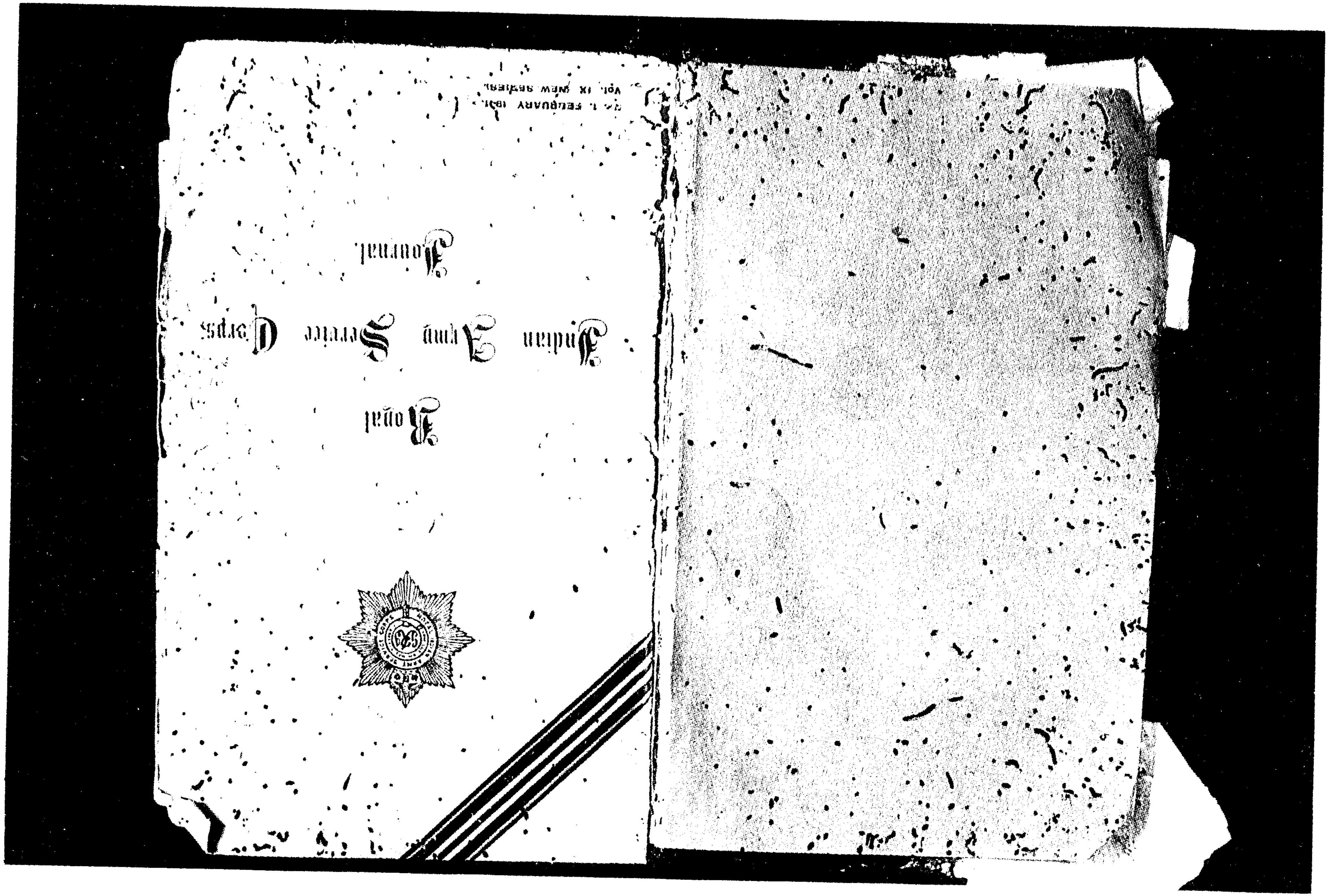
प्लेट 2. वि[illegible] हाइग्रोमीट[illegible]



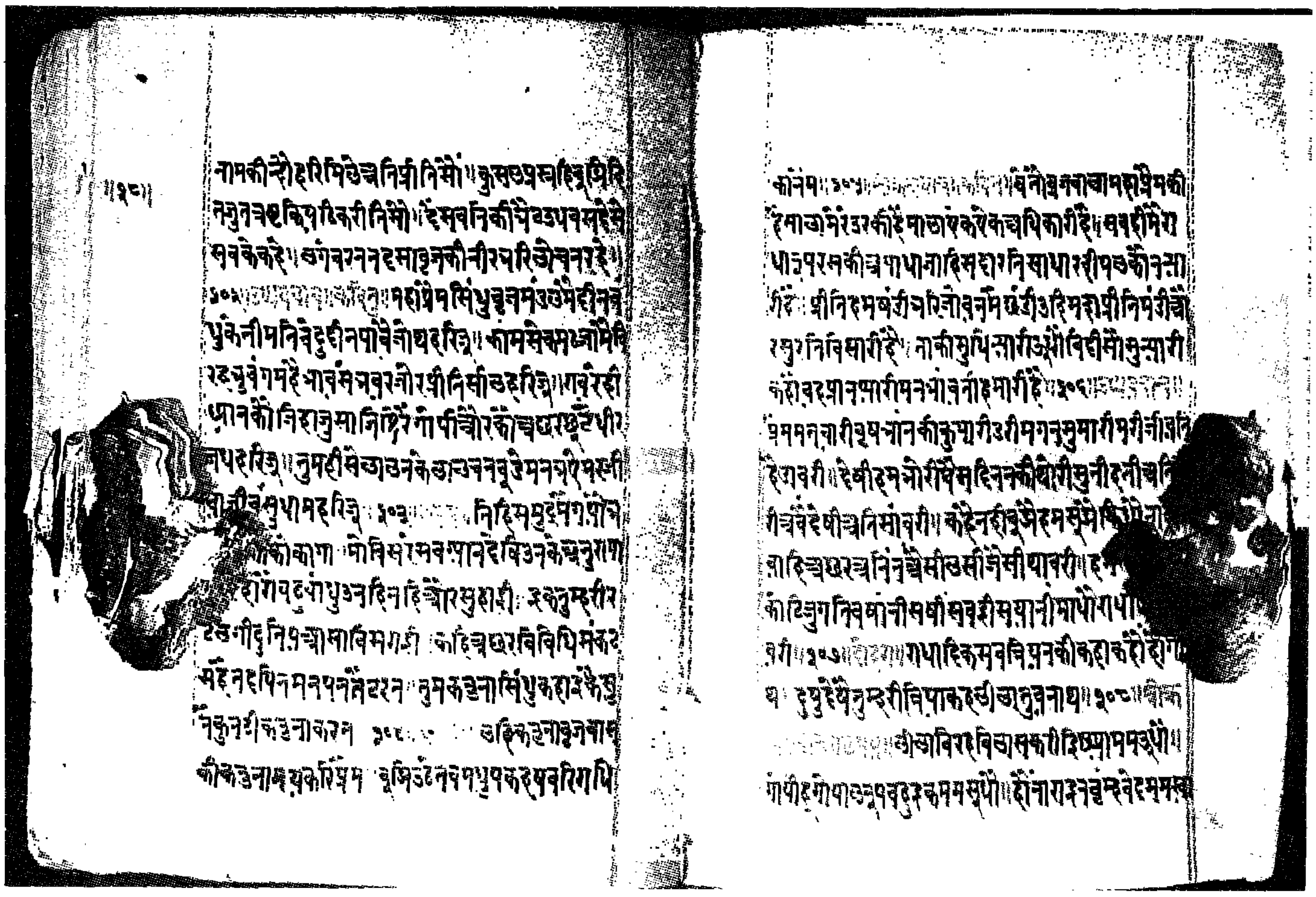
प्लेट 3. ताप आर्द्रतालेखी।



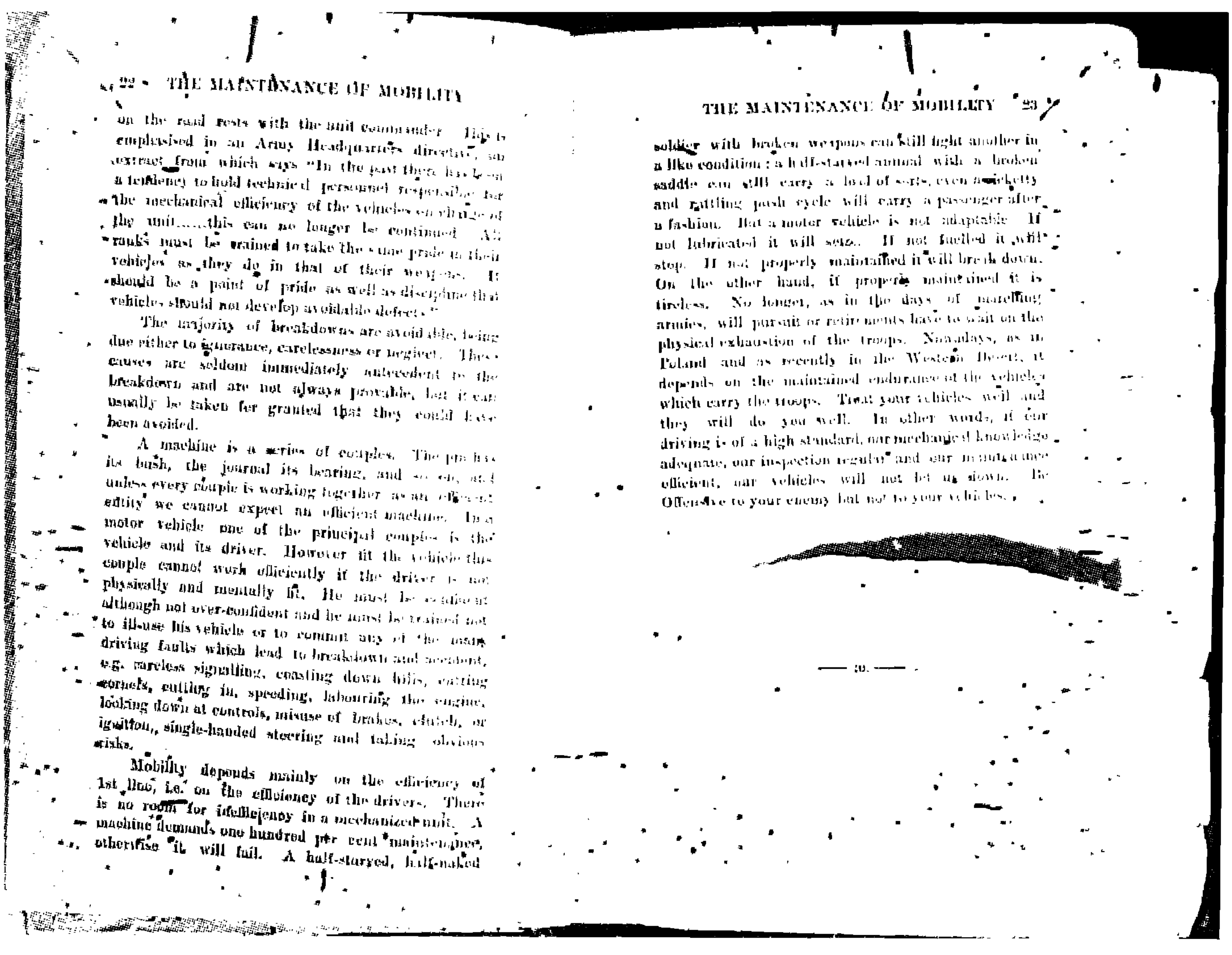
प्लेट 4. कीटों द्वारा क्षतिग्रस्त वस्त्र।



प्लेट 5. कीटों द्वारा क्षतिग्रस्त पुस्तकें।



प्लेट 6. दीमक द्वारा क्षतिग्रस्त पांडुलिपि।



22 THE MAINTENANCE OF MOBILITY

on the road rests with the unit commander. This is emphasised in an Army Headquarters directive, an extract from which says "In the past there has been a tendency to hold technical personnel responsible for the mechanical efficiency of the vehicles on charge of the unit......this can no longer be continued. All ranks must be trained to take the same pride in their vehicles as they do in that of their weapons. It should be a point of pride as well as discipline that vehicles should not develop avoidable defects."

The majority of breakdowns are avoidable, being due either to ignorance, carelessness or neglect. These causes are seldom immediately antecedent to the breakdown and are not always provable, but it can usually be taken for granted that they could have been avoided.

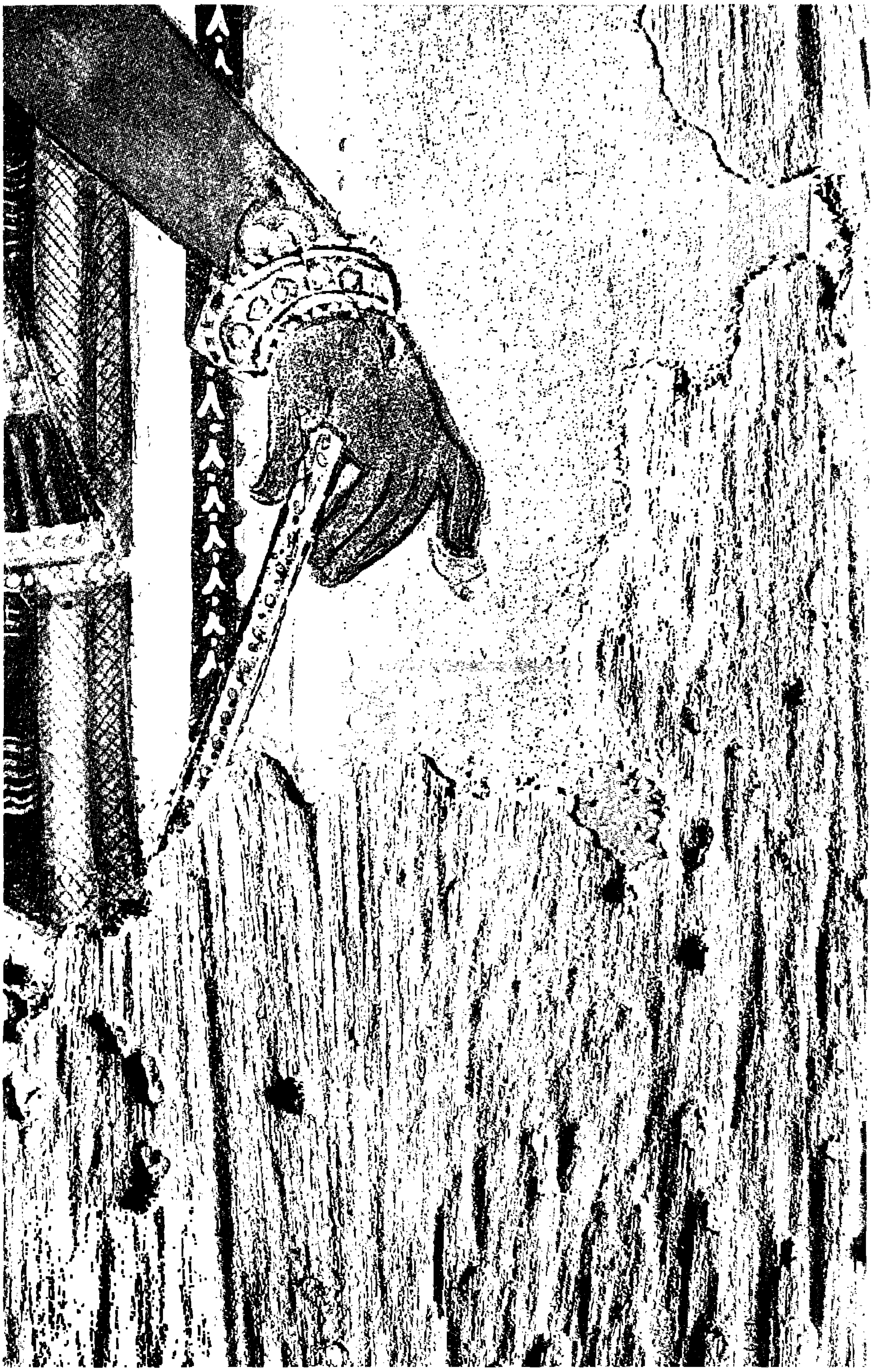
A machine is a series of couples. The pin has its bush, the journal its bearing, and so on, and unless every couple is working together as an efficient entity we cannot expect an efficient machine. In a motor vehicle one of the principal couples is the vehicle and its driver. However fit the vehicle this couple cannot work efficiently if the driver is not physically and mentally fit. He must be confident although not over-confident and he must be trained not to ill-use his vehicle or to commit any of the many driving faults which lead to breakdown and accident, e.g. careless signalling, coasting down hills, cutting corners, cutting in, speeding, labouring the engine, looking down at controls, misuse of brakes, clutch, or ignition, single-handed steering and taking obvious risks.

Mobility depends mainly on the efficiency of 1st line, i.e. on the efficiency of the drivers. There is no room for inefficiency in a mechanized unit. A machine demands one hundred per cent maintenance, otherwise it will fail. A half-starved, half-naked

THE MAINTENANCE OF MOBILITY 23

soldier with broken weapons can still fight another in a like condition: a half-starved animal with a broken saddle can still carry a load of sorts, even a rickety and rattling push cycle will carry a passenger after a fashion. But a motor vehicle is not adaptable. If not lubricated it will seize. If not fuelled it will stop. If not properly maintained it will break down. On the other hand, if properly maintained it is tireless. No longer, as in the days of marching armies, will pursuit or retirements have to wait on the physical exhaustion of the troops. Nowadays, as in Poland and as recently in the Western Desert, it depends on the maintained endurance of the vehicles which carry the troops. Treat your vehicles well and they will do you well. In other words, if our driving is of a high standard, our mechanical knowledge adequate, our inspection regular and our [illegible] efficient, our vehicles will not let us down. Be Offensive to your enemy but not to your vehicles.

प्लेट 7. पुस्तककृमि द्वारा क्षतिग्रस्त पुस्तक का एक पृष्ठ।



प्लेट 8. काष्ठचूर्णकारी भृंगों द्वारा क्षतिग्रस्त काष्ट।



प्लेट 9. खुले स्थानों में स्थित स्मारकों और मूर्तियों में शैवाल और मॉस।



[illegible]

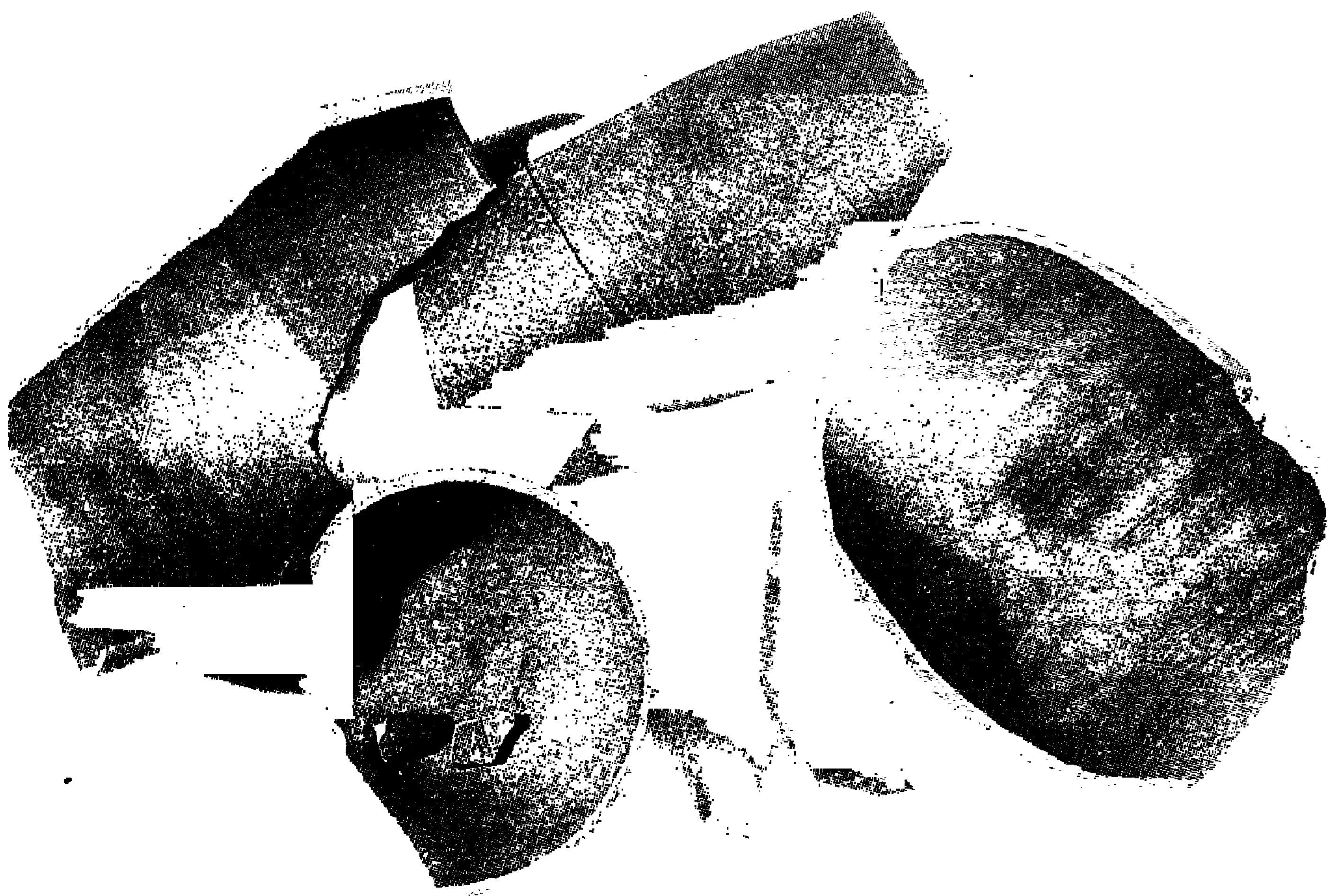


प्लेट 11. विकृत पाषाण-मूर्ति।



प्लेट 12. विकृत धातु की वस्तु।

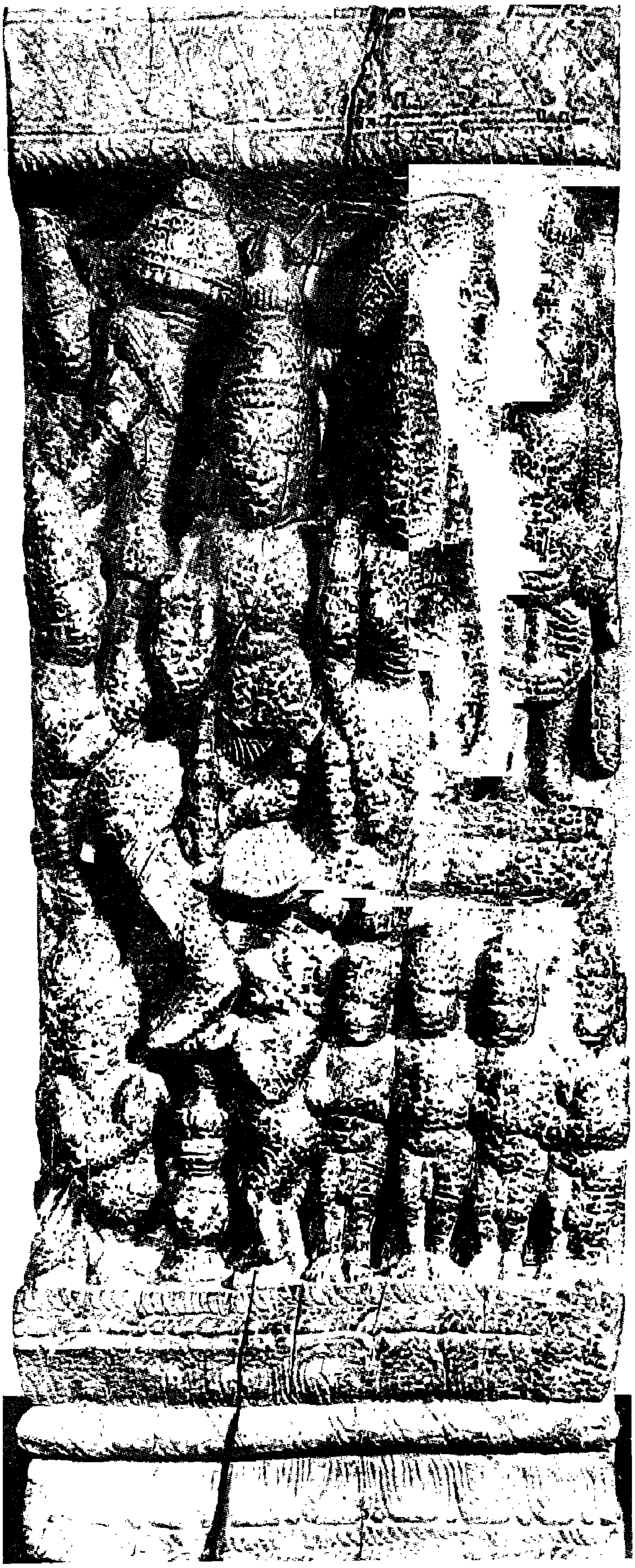


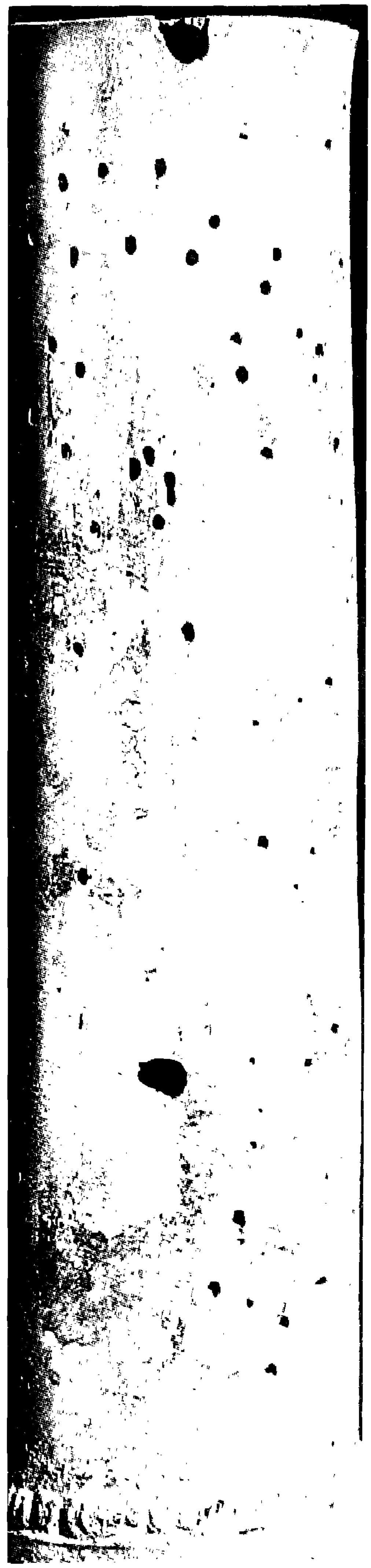


प्लेट 14. अचानक गिरकर टूटा सिरेमिक का पात्र।



प्लेट 15. विकृत काष्ठ सामग्री।



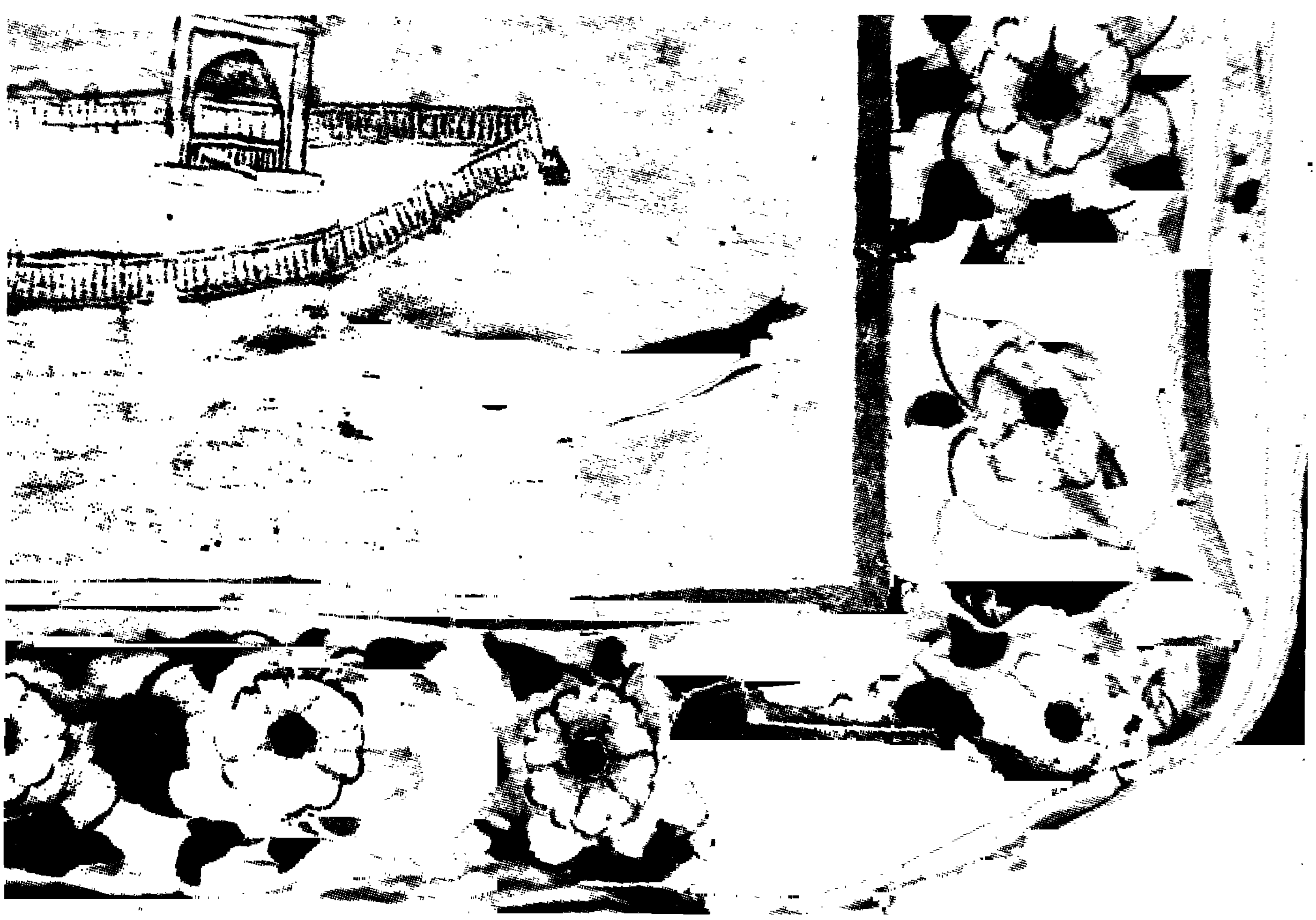


प्लेट 16. लकड़ी की कला-वस्तु, जिसकी सतह पर दरारें पड़ चुकी हैं।

प्लेट 17. छिद्र करने वाले कीटों द्वारा क्षतिग्रस्त बांस की कला-वस्तु।



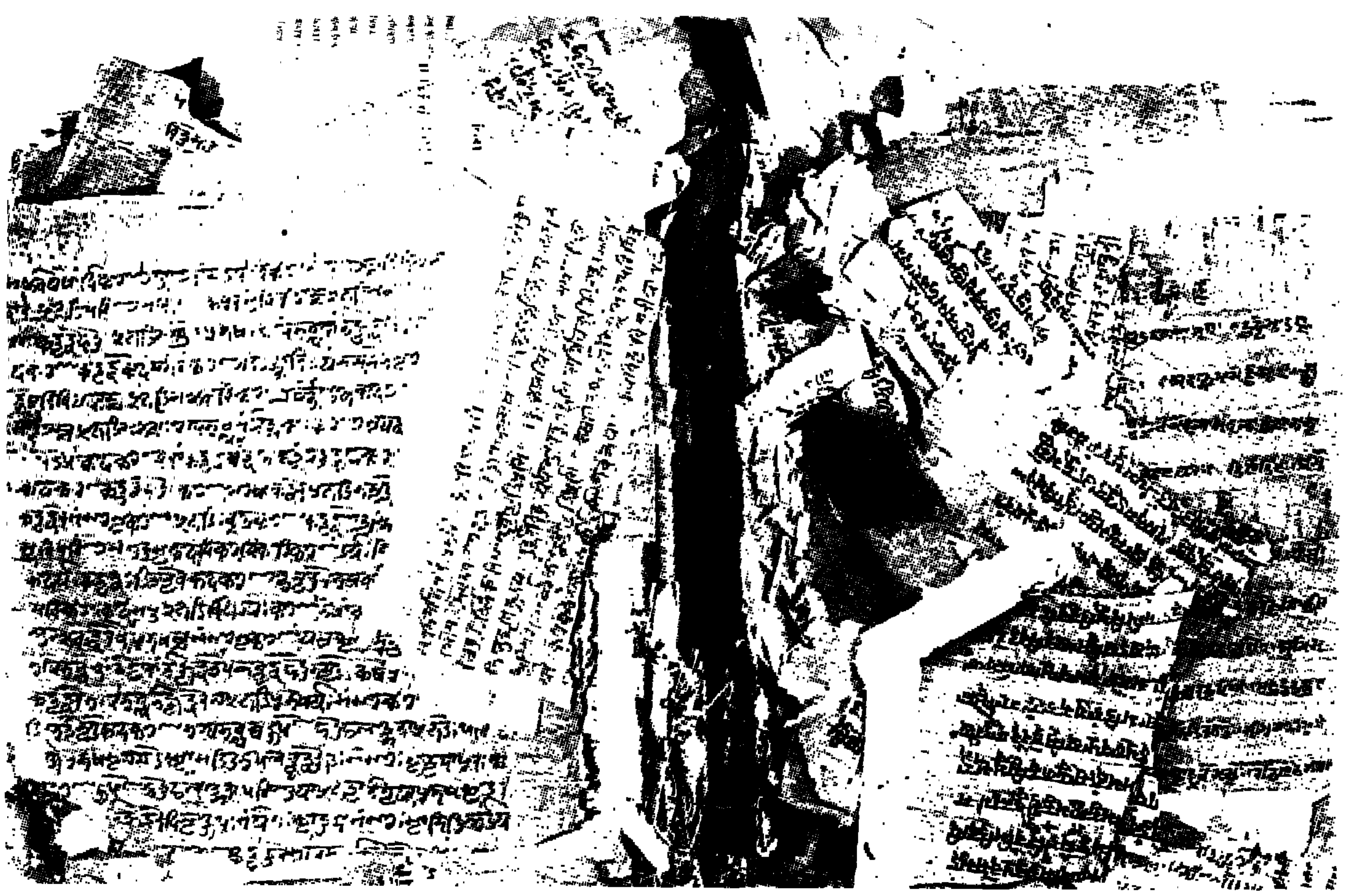
प्लेट 18. कवक द्वारा क्षतिग्रस्त वस्त्र।



प्लेट 19. अम्लीय रंग के प्रभाव से काला पड़ गया वस्त्र। इस वस्त्र में प्रयुक्त काला रंग अम्लीय था।



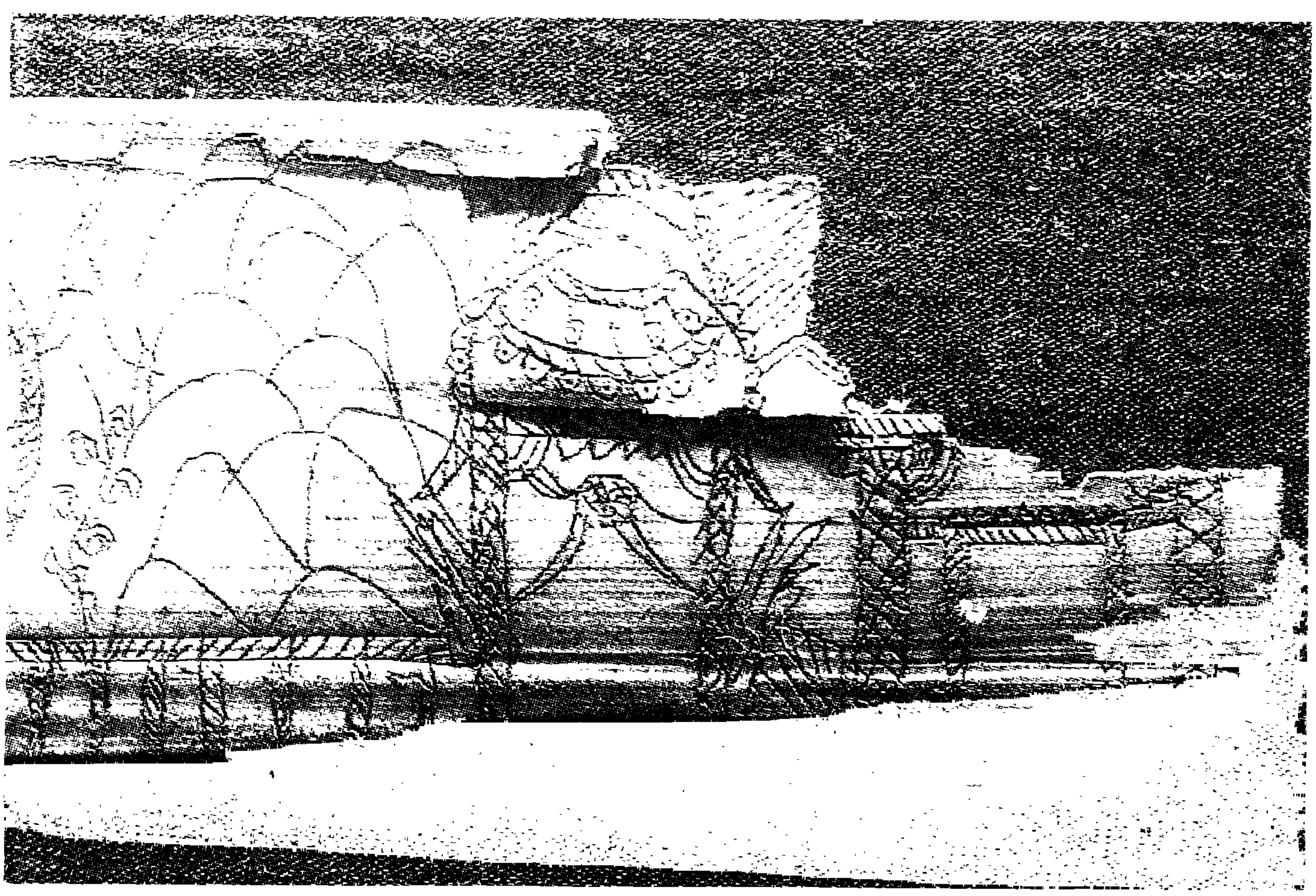
प्लेट 20. भोजपत्र पांडुलिपि का एक नमूना।



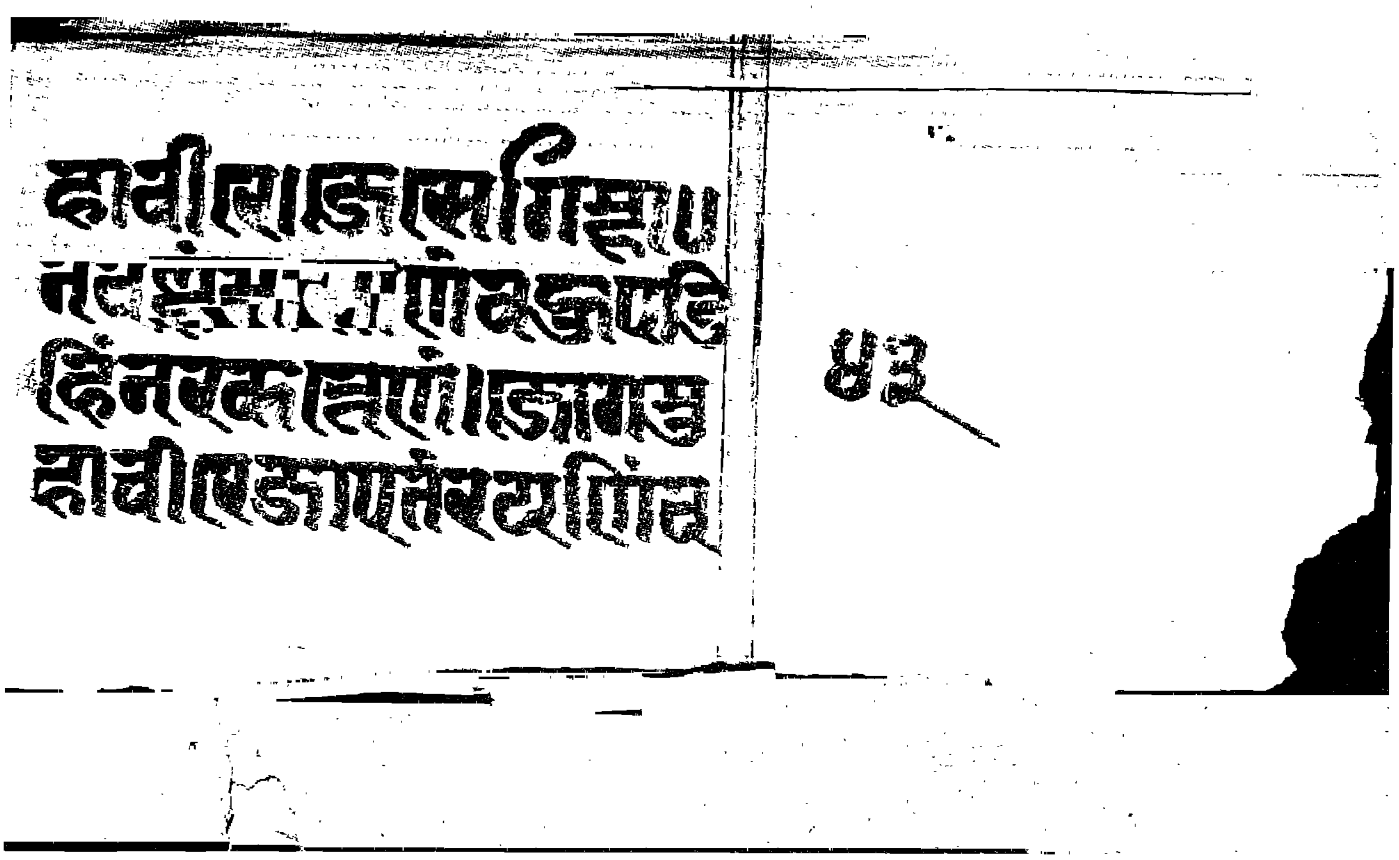
प्लेट 21. समय के प्रभाव से भोजपत्र कमजोर और भंगुर हो जाता है।



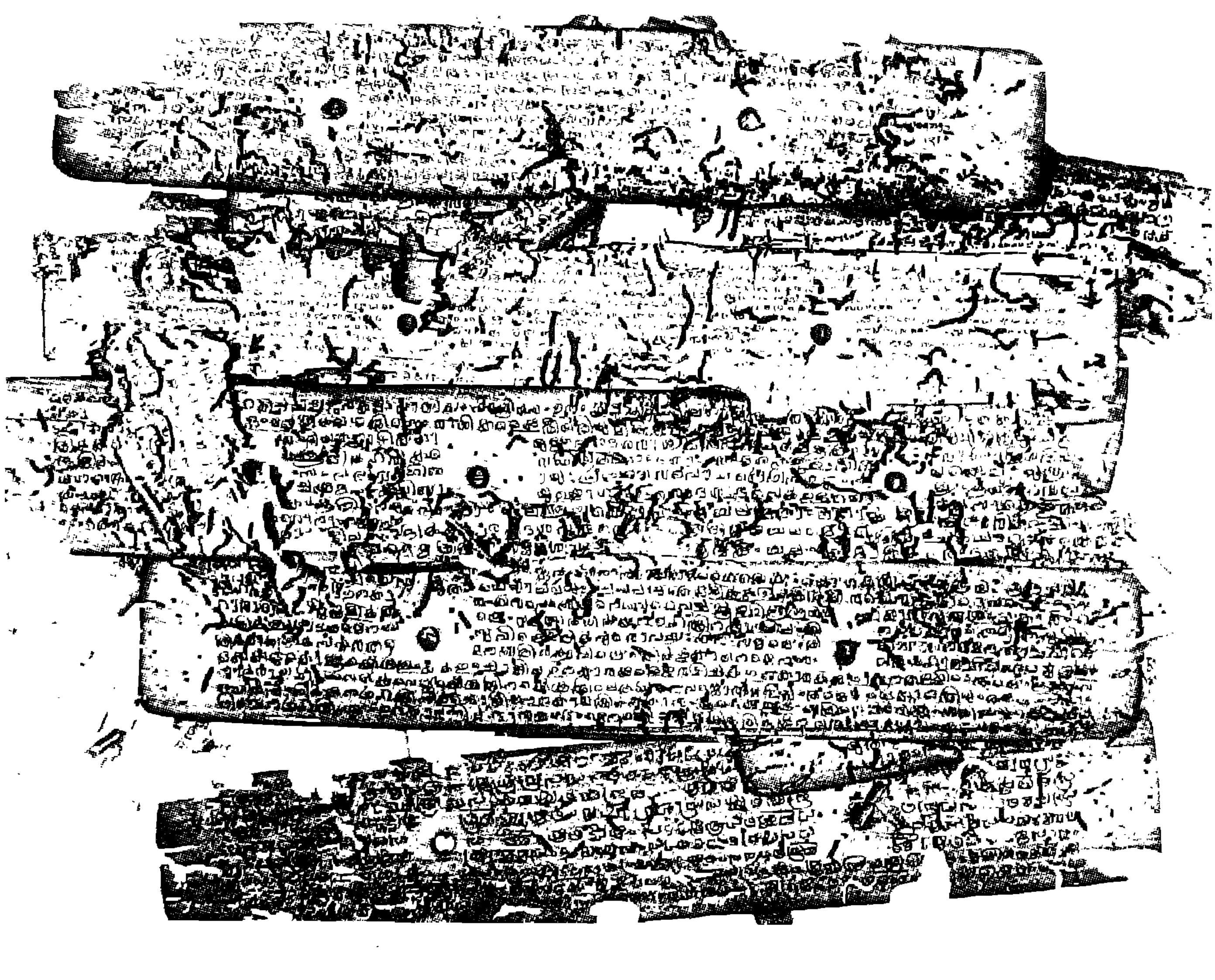
प्लेट 22. ताड़पत्र पांडुलिपि का एक नमूना।



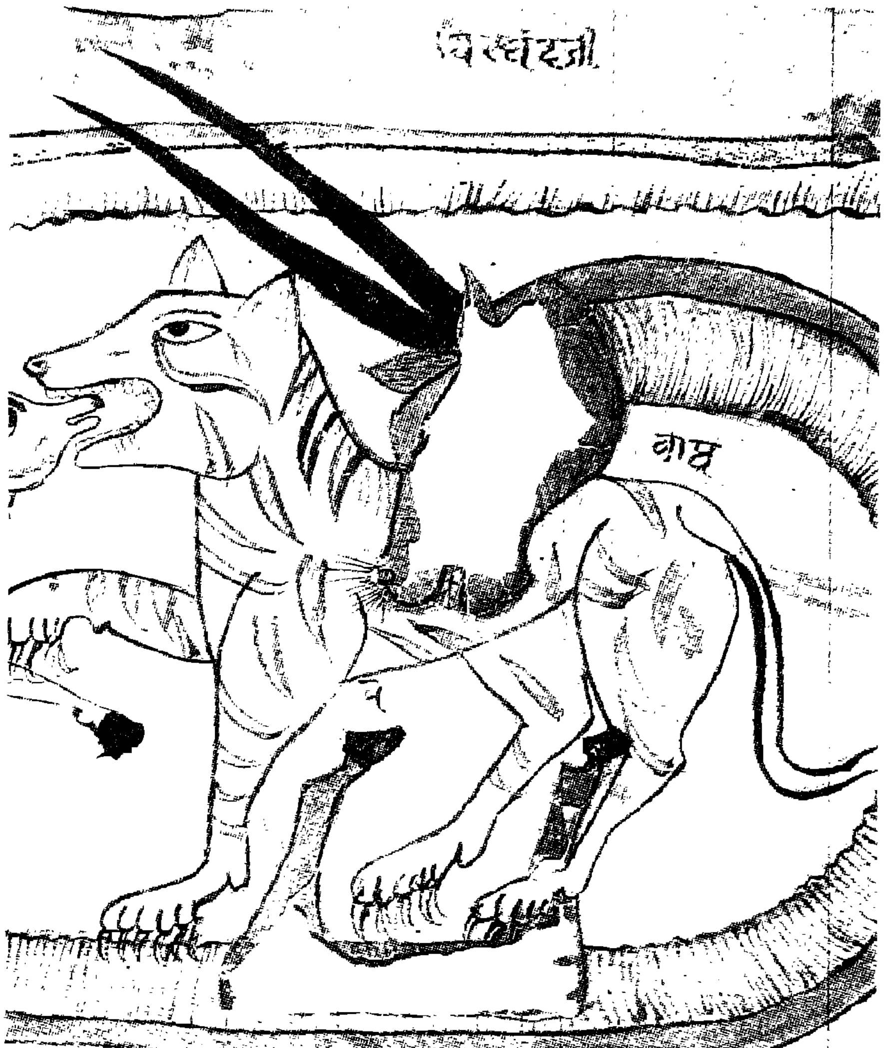
प्लेट 23. पुराना हो जाने पर ताड़पत्र कमजोर और भंगुर हो जाता है।



प्लेट 24. ताड़पत्र का सबसे अधिक नाजुक भाग उसका किनारा होता है। अधिकतर इसका किनारे का भाग रखरखाव के दौरान क्षतिग्रस्त हो जाता है।



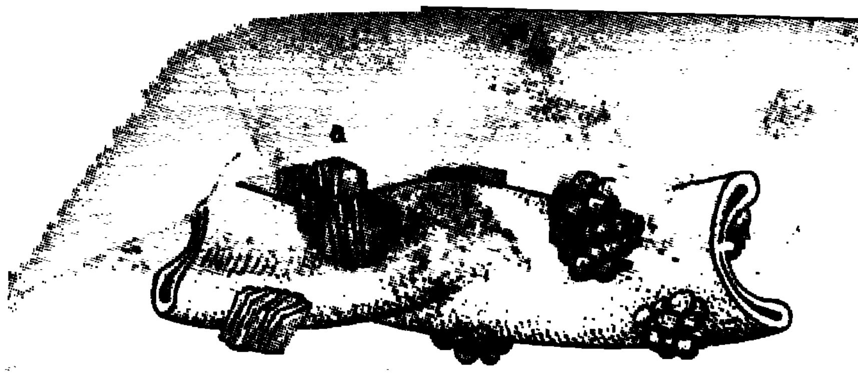
प्लेट 25. ताड़पत्रों को कीट गंभीर क्षति पहुंचाते हैं।



प्लेट 26. वेडिग्रिस भी कागज को क्षति पहुंचाते हैं।



प्लेट 27. चकत्ते पड़े कागज का नमूना।



How Redeposition Occurs?

Figure 2-a. Claylike macrosoil
2-b Carbonlike macrosoil

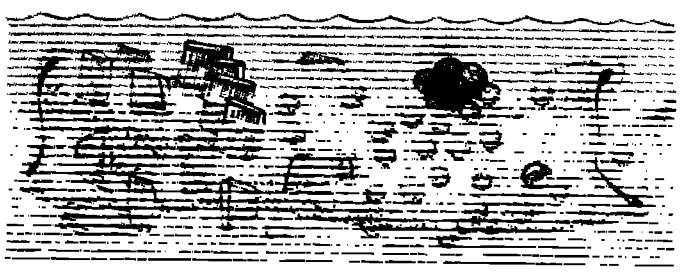


Figure 3 Particles break up in emulsifier

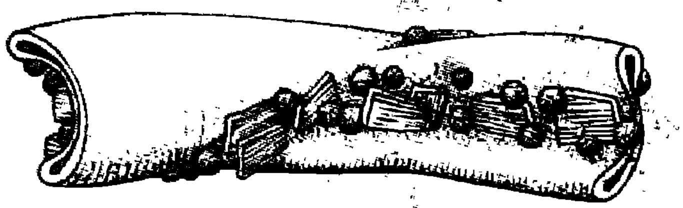


Figure 4 Particles deposit in fiber irregularities

remain so until the ionic or electrostatic energy status of the water mixture is upset. Flocculation and depositing of these sub-particles on convenient surfaces such as the fibers in contact with the water may be caused by adding salt, alum, acid or other sources of ions or by drastic changes in the state of agitation of the liquid, either by complete arrest or by violent stirring. In any of these cases, these sub-particles, at the moment of contact, seem to be very fine and have very great attraction for the fiber surfaces. The net result is much resistance to removal. This is called redeposition and becomes a most difficult cleaning problem. It is illustrated by Figures 3 and 4. Perhaps this will become clearer after an explanation of the objectionable properties of soils.

Besides lack of solubility in water, these soil types have five adverse characteristics that make them resistant to cleaning. These are:

1. They repel water and cannot be penetrated or wetted easily.

2. Before they can be removed, their natural stickiness or attraction for the fiber surface must be overcome.

3. Once loosened from that surface, they must be broken up and suspended in water before they can be flushed away.

4. After suspension, any tendency for them to coagulate and settle out must be discouraged.

5. Should the soil particle accidentally recontact the cleaned surface, something must be done to keep it from re-adhering.

The above list will provide clues to detergency and the surface activity requirements for an ideal cleaning agent for these and even many dissimilar soils. Very many soaps and ancient and modern detergents have the necessary qualities to overcome these adverse characteristics. However, an adequate exposition of the subject of detergency and specifications for suitable detergents in detail is a project which we have reserved for a future report because of the profound and unique theories necessary in explaining how they work.

13

प्लेट 28. कवक लगी कागज की पुस्तक का नमूना।



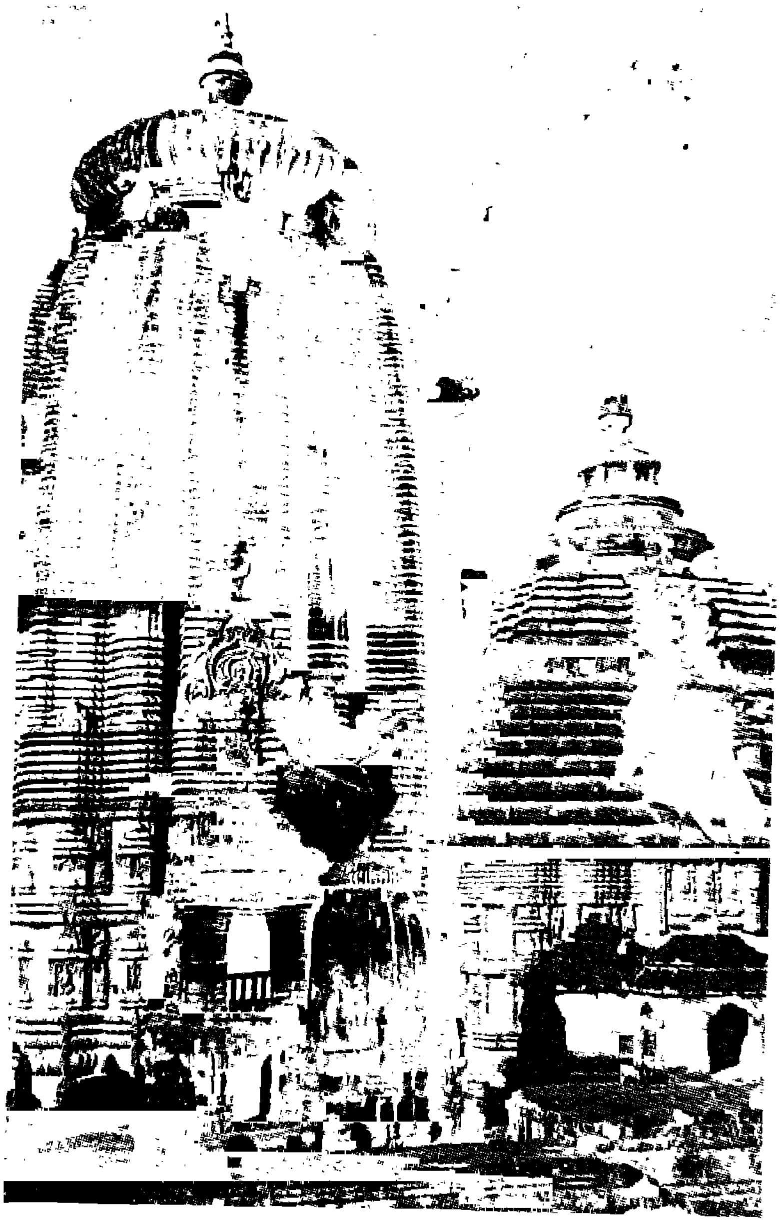
प्लेट 29. कीटों द्वारा क्षतिग्रस्त चमड़े की जिल्द।



प्लेट 30. तंगखा का फोटोग्राफ।



प्लेट 31. वायुमंडलीय आर्द्रता के घटने-बढ़ने से काष्ठ के फलक में विस्तार और संकुचन के साथ-साथ उसमें लगे हुए पेंट की पपड़ियां भी निकलने लगती हैं।



प्लेट 32. कवक द्वारा क्षतिग्रस्त फोटोग्राफ।



प्लेट 33. दरारों से युक्त हाथीदांत की मूर्ति।

चूंकि प्रत्येक धातु को परिरक्षित करने की अलग-अलग विधियां होती हैं, अतः इस अध्याय में हम उनका अलग-अलग अध्ययन करेंगे।

सोना

सोना, एक उत्कृष्ट धातु माना जाता है। बहुत लंबी अवधि तक भूमि के गर्भ में दबे रहने पर भी उसमें जंग नहीं लगता है और यही कारण है कि उसके उपचार की आवश्यकता नहीं होती है। जल, हल्के डिटरजेंट या साबुन से धो लेने से ही उसमें लगी हुई सारी धूल निकल जाती है। सोने की वस्तुओं को साफ करने के लिए रीठे का घोल सबसे उत्तम होता है। रीठे के छिलकों को सारी रात भिगोकर, घोल को निथारने के बाद, उस घोल में सोने की वस्तु को कुछ समय के लिए डुबोकर रख दिया जाता है। इस सोने की सामग्री को बाद में मुलायम कपड़े या नरम ब्रश से धीरे-धीरे रगड़कर साफ किया जाता है।

सोने की टूटी हुई, विरूपित अथवा पिचकी हुई वस्तुओं की मरम्मत का कार्य विशेषज्ञों द्वारा ही किया जाना चाहिए, उन्हें किसी नौसिखिए को मरम्मत के लिए कदापि नहीं देना चाहिए। यद्यपि सोने में जंग नहीं लगता, पर यह काफी लचीला होता है। अतः सही रखरखाव के अभाव में इससे बनी वस्तुओं को बड़ी सरलता से क्षति पहुंच सकती है। इसकी उचित प्रकार से संभाल और रखरखाव के लिए काफी अधिक देखरेख की आवश्यकता होती है। अतः सोने की वस्तुओं को मुलायम टिशू कागज में लपेटकर, अलग-अलग डिब्बों में रखना चाहिए जिससे वे एक दूसरे से आपस में रगड़ न खाएं। यदि इनकी पालिश करनी हो तो सांभर के चमड़े या मुलायम फाहे का प्रयोग किया जाना चाहिए। उन वस्तुओं और आभूषणों के विषय में विशेष सावधानी बरती जानी चाहिए जो रत्न जड़ित हों अथवा जिनमें मीनाकारी का कार्य किया गया हो। इनमें थोड़ा अधिक दबाव पड़ने पर रत्नों के खांचे डीले पड़ जाते हैं और खांचों में से रत्न बाहर निकल सकते हैं। सोने के आभूषणों की सफाई के लिए रूई या ऐसे तंतुओं का प्रयोग कतई नहीं करना चाहिए जो उसकी गुलमेखों में फंस जाए।

चांदी

सोने की तरह चांदी भी एक उत्कृष्ट धातु मानी जाती है, पर यह एक विशिष्ट वायुमंडल में संक्षारित होने लगती है।

चांदी की तुलना में, रजत-लवण, रजत-क्लोराइड और रजत-सल्फाइड अधिक टिकाऊ होते हैं। अतः चांदी या रजत की वस्तुएं जब क्लोराइड और सल्फाइड

के संपर्क में आती हैं तो वे अपने क्रम के अनुसार रजत-लवणों में परिवर्तित हो जाती हैं। रजत-क्लोराइड धूसर (स्लेटी) या गंदले श्वेत रंग का होता है। अतः चांदी का रंग भी वैसा ही हो जाता है, जब वह क्लोराइड के संपर्क आती है। रजत-सल्फाइड का रंग काला होता है। अतः चांदी की वस्तु पर सल्फाइड की काली परत बन जाती है। चांदी पर, इस प्रकार की क्लोराइड अथवा सल्फाइड की परतों को रसायनों से साफ किया जा सकता है जिससे उसकी संक्षारण प्रक्रिया से रक्षा की जा सके। कभी-कभी संक्षारण के कारण वस्तु के ऊपर एक बहुत ही सुंदर पतली परत जम जाती है जो उसकी सुंदरता में निखार ला देती है। इस परत को छदिमा (पेटिना) कहा जाता है, जिसकी विरचना समय के बीतने के साथ स्वतः होती रहती है; यह उसकी प्राचीनता का द्योतक है तथा इसका अपना आलंकारिक महत्व है। यदि, पेटिना की परत किसी लेख या अभिलेखों को पढ़ने में बाधा उपस्थित करती है तो 'सिल्वो' या 'सिल्वो डिप' का घोल चांदी की बदरंग आभा को साफ करने के लिए किया जाता है। इस घोल को वस्तु की सतह पर रूई के फाहे से लगाया जाता है और इसके बाद वस्तु की सतह साफ कर उस पर साफ मुलायम कपड़े से पालिश की जाती है।

चांदी की वस्तुओं पर पालिश करने के लिए एक सस्ती पालिश, वाइटिंग पाउडर का पेस्ट बनाकर बनाई जा सकती है जो पेंट विक्रेताओं की दुकानों में मिलता है। इसमें बराबर मात्रा में पानी तथा मेथिलीन स्पिरिट एवं अमोनिया की कुछ बूंदें मिला लें। इस पालिश को साफ और मुलायम कपड़े से वस्तु पर लगाएं। वस्तु के समस्त बदरंग स्थानों को साफ करने के बाद, अंत में उसे मुलायम कपड़े से पालिश करें। चांदी की वस्तुओं को प्लास्टिक, रबड़, बेकलाइट, प्लेटिसीन तथा नैफ्थलीन की गोलियां, जिनमें सल्फर और उसके योगिकों के होने की अधिक संभावना होती है, के संपर्क में नहीं आने देना चाहिए। इसलिए, चांदी की वस्तुओं को सल्फरविहीन टिशू कागज की अनेक परतों में लपेटकर, पालिथीन के थैलों में रखना चाहिए। आजकल बाजार में रसायन लगे ऐसे टिशू कागज मिलते हैं जो सल्फाइडों को सोख लेते हैं। सामग्री को पहले सादे टिशू और उसके बाद बदरंग-रोधी कागज में लपेटना चाहिए।

प्रदर्शनार्थ रखी हुई चांदी की वस्तुओं की रक्षा का कार्य अधिक कठिन है क्योंकि इन वस्तुओं के ऊपर संरक्षी कागज या कागज की शीट को नहीं रखा जा सकता। चांदी की वस्तुओं की सुरक्षा के लिए जो आलेपन किया जाता है, उसका प्रभाव चांदी के रंग को बदरंग होने से रोकने में कुछ ही सीमा तक सहायक होता है। सल्फररहित टाल्यून में 3 प्रतिशत पालिविनाइल एसिटेट के घोल का

लेप उनकी सुरक्षा के लिए काफी उपयोगी होता है।

यदि चांदी की वस्तु में, सफेद, स्लेटी या हरे रंग की परत जम जाती है तो वह उसके संक्षारण का संकेत देती है। ऐसे मामलों में किसी संरक्षण-विशेषज्ञ की सहायता ली जानी चाहिए। संरक्षण विशेषज्ञ इसका पता लगाते हैं कि संक्षारित परतों को किस विधि से दूर किया जाए और भविष्य में लगने वाले संक्षारणों से इसकी किस प्रकार रक्षा की जाए।

तांबा

तांबा और उसके मिश्रातु (एलॉए) जैसे कांसा या पीतल जब भूमि के नीचे दबे रहते हैं तो बड़ी सरलता से संक्षारित होने लगते हैं। मिट्टी में अनेक प्रकार के लवण पाए जाते हैं जो धातु को लवणों में बदल देते हैं। उनके क्लोराइड की संक्षारित परतें तांबे की सतहों को ढंक देती हैं और धातु को भुरभुरा और कमजोर बना देती हैं। क्लोराइड से युक्त ये संक्षारी परतें इतनी अधिक प्रभावी होती हैं कि वे नई धातु को लवणों में बदलने की सामर्थ्य रखती हैं, चाहे वे अब मिट्टी के संपर्क से दूर ही क्यों न हों। तांबे के इस लगातार संक्षारण की प्रक्रिया को 'ताम्र व्याधि' का नाम दिया गया है। नमी की अधिकता से ताम्र व्याधि में बढ़ोतरी होती है। आर्द्रता को नियंत्रण में रखने के लिए विशेष प्रकार के शोकेसों को बनवाना चाहिए जिनके अंदर सिलिका जैल को रखने की व्यवस्था हो सके। तांबे की वस्तुओं की व्याधि का उपचार एक अच्छी संरक्षण प्रयोगशाला में किया जा सकता है। परिरक्षक लेपन विलायकों में बेंजोट्राइजोल उन चंद उपलब्ध संघटकों में है जिन्हें यदि तांबे, कांसे या पीतल की वस्तुओं पर लेपित किया जाए तो क्षय से उनकी रक्षा की जा सकती है।

लोहा और इस्पात

नमी वाली जलवायु में लोहे और इस्पात की वस्तुओं में बड़ी सरलता से जंग लग जाता है। खुदाई में मिली लोहे की वस्तुओं में प्रायः जंग लगा रहता है। कभी-कभी तो धातु का कुछ भाग ही बचा रहता है। यदि लोहे की कोई वस्तु पहले से ही संक्षारित होती है तो उसे उपचार के लिए प्रयोगशाला में भेजा जाना चाहिए। कभी-कभी वस्तुओं में इतना अधिक जंग लगा रहता है कि उसे हटाने की प्रक्रिया में वस्तु के संपूर्ण या महत्वपूर्ण भाग नष्ट होने की संभावना रहती है। ऐसी स्थिति में, जंग या मोरचे को भी वस्तु के साथ संरक्षित किया जाना चाहिए। वस्तु में अब आगे से जंग न लगे, इसकी रोकथाम के लिए, वस्तु की

सतह में जल-प्रत्याकर्षी जैसे सूक्ष्म-क्रिस्टली मोम का प्रयोग किया जाता है। वस्तु को या तो मोम में डुबो दिया जाता है या मोम को वस्तु पर ब्रश से लगाया जाता है।

वस्तुओं को सुदृढ़ बनाने तथा भावी संक्षारण से उसकी रक्षा के लिए उनमें मोम के अलावा कोई दृढ़कारी पदार्थ अथवा वार्निश का लेप लगाया जा सकता है। इनमें पालिविनाइल एसिटेट का घोल उल्लेखनीय है।

लोहे की अनेक प्रकार की तलवारें जैसे दमिश्की तलवारें (पच्चीकारी की गई तलवारें) और मलयन तलवारों के फालों में बहुत सुंदर सजावटी नमूने बने रहते हैं जो प्रायः संक्षारण से नष्ट हो जाते हैं। इन सजावटी नमूनों का पुनरुद्धार 'एचिंग' द्वारा किया जा सकता है। पर इनमें तेजाबों का प्रयोग करना काफी जोखिम भरा है। इसलिए इनके उपचार का उत्तरदायित्व संरक्षण प्रयोगशालाओं पर ही छोड़ देना चाहिए। धातु की वस्तुओं में रासायनिक संक्षारण तो होता ही है, पर इसके साथ ही साथ उन्हें भौतिक क्षति भी हो सकती है। इन्हें कभी भी एक दूसरे के ऊपर टिकाकर नहीं रखना चाहिए (चित्र 14)। स्वर्ण-पट्टित और रजत-पट्टित वस्तुओं के बारे में विशेष सावधानी बरती जानी चाहिए। सोने का पानी की गई वस्तुओं और रजत-पट्टित वस्तुओं में बड़ी सरलता से खरोंचें लग जाती हैं। सिक्कों और अंगूठियों जैसी लघु आकार की वस्तुओं को अलग-अलग छोटे-छोटे डिब्बों या लिफाफों में रखना चाहिए। वस्तुओं की पहचान संबंधी संपूर्ण विवरण उन पर ठीक से अंकित करना चाहिए।

धातु की वस्तुओं को सांभर के चमड़े या मुलायम कपड़े से साफ करना चाहिए। धातु की बनी कुछ वस्तुएं जैसे बीदरी पात्र, कृष्णधातु तथा मीनाकारी की वस्तुओं की सफाई करने में विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है।

बीदरी वस्तुओं की सतह अत्यंत काले रंग की होती है जिन पर कभी-कभी सोने और चांदी की पच्चीकारी की जाती है (प्लेट 13)। बीदरी बरतनों के निर्माण में मुख्यतया जिंक धातु का प्रयोग किया जाता था, जिसमें तांबा, टिन और लैड धातुओं को मिलाया जाता था। इनका बीदरी नामकरण दक्षिण भारत के एक स्थान बीदर पर पड़ा जहां पर एक विशिष्ट प्रकार की मिट्टी मिलती थी जिसका इस मिश्रातु पर रासायनिक प्रभाव पड़ता था और इसका प्रयोग इन वस्तुओं को बनाने में किया जाता था। वस्तुओं की ढलाई और पालिश हो जाने के उपरांत इनमें डिजाइन उत्कीर्ण किए जाते हैं। इसके बाद इसमें चांदी के तारों या प्लेटों से डिजाइन बनाने के बाद उन्हें इस विशेष मिट्टी से रगड़ा जाता है। इस प्रक्रिया से वस्तु का रंग अत्यंत सुंदर, गहरा काला हो जाता है और चांदी के तार इसमें

अपनी चमक बिखेरते हैं।

बीदरी पात्रों में कभी-कभी उत्खचित शीट और तारें मुख्य धातु से अलग होने लगती हैं। जैसे ही ऐसी स्थिति का आभास हो तो तत्काल चांदी के तारों को एरालडाइट से फिर से चिपका देना चाहिए, अन्यथा उनका एक बड़ा भाग अलग हो सकता है।

बीदरी पात्रों को उठाने, रखने तथा भंडारण के नियम वे ही हैं जो सामान्य पात्रों के बारे में लागू होते हैं। बीदरी वस्तुओं का काला रंग ही उनकी शोभा है। यदि इन पात्रों को अम्लीय या क्षारीय घोल से साफ किया जाए तो इनकी काली पालिश समाप्त हो जाती है। इनमें जड़ाई का कार्य होने से ये वस्तुएं काफी नाजुक होती हैं तथा इन्हें हमेशा शुष्क वातावरण में टिशू कागज में लपेटकर, पालिथीन के थैलों के अंदर रखना चाहिए।

बीदरी की तरह इनैमल की गई समस्त वस्तुओं के लिए विशेष देखभाल की आवश्यकता पड़ती है। धातुओं की सतह पर विभिन्न रंगों की चमक का संगलन कर उनमें इनैमल किया जाता है। इनैमल वास्तव में कांच है। कुछ इनैमलों, जैसे 'सोडा इनैमल' जिसे 'मृदु इनैमल' भी कहा जाता है, पर आर्द्र जलवायु का बड़ी आसानी से प्रभाव पड़ता है।

इनैमल हुई वस्तुओं को विशेष खतरा, धातु पर अलंकरणों की चिप्पड़ों के निकलने से होता है। इनैमल हुई वस्तुओं के रखरखाव के लिए काफी अधिक सावधानी की आवश्यकता होती है।

यदि वस्तु के किसी थोड़े से स्थान से इनैमल की चिप्पड़ें बाहर निकल रही हों तो उसकी मरम्मत की तत्काल कार्रवाई की जानी चाहिए। वस्तु के खाली स्थान में पोलियस्टर रेजिन को भर देना चाहिए जिससे उसे अधिक मजबूती प्राप्त हो सके। यदि इस पर ध्यान न दिया जाए तो वस्तु में चिप्पड़ों के निकलने का क्रम लगातार चलता रहता है।

सिक्के

लगभग सभी पुरातत्व संग्रहालयों और निजी संग्रहों में सिक्कों का महत्वपूर्ण स्थान होता है, अतः इसका विशेष उल्लेख करना आवश्यक है। जब उत्खनन के दौरान ये प्राप्त होते हैं, तब इन्हें साफ किया जाता है। आगामी सफाई के लिए इन्हें कुछ दिनों तक 10 प्रतिशत सोडियम सेसक्विकार्बोनेट या 5 प्रतिशत रोशेल लवण के घोल में रख दिया जाता है। उपचार के उपरांत बचे हुए रसायनों को सिक्के पर से साफ पानी से अच्छी तरह धोकर हटा देना चाहिए।

सिक्कों की सफाई करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि सिक्कों पर खुदे लेखों और आख्यानों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान होता है। इन्हें किसी भी कीमत पर, चाहे वे कितने ही संक्षारित हो गए हों, मिटने नहीं देना चाहिए।

इन्हें रगड़ से बचाने के लिए प्रत्येक सिक्के को साफ टिशू कागज में लपेटकर, एक अलग लिफाफे में संख्यांकित कर पहचान चिह्न अंकित किया जाना चाहिए। लकड़ी के कम ऊंचाई के दराजों के खानों में सिक्कों को रखा जाना चाहिए। संग्रहालयों में सिक्कों को रखने का यह सबसे अच्छा तरीका है।



10

सिरेमिक

सिरेमिक एक सामान्य शब्द है जिसे मिट्टी से बने बरतनों, जैसे कि पॉट्री, पोर्सिलेन और मिट्टी के बरतनों आदि के लिए प्रयुक्त किया जाता है। प्रकृति प्रदत्त सामग्रियों में मनुष्य की सबसे प्रमुख खोज मिट्टी ही थी, जिसे मनुष्य ने अपनी आवश्यकता के अनुरूप ढाला। विश्व के अनेक भागों के प्राचीन उत्खनित स्थलों से बहुत बड़ी संख्या में अनेक मिट्टी के बरतन और पात्र, जैसे कि मिट्टी के मटके, खिलौने, मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। दूसरी शताब्दी में पूर्व और दक्षिण-पूर्व एशिया में मुख्यतया दक्षिण चीन में बहुत बड़ी संख्या में इनका उत्पादन होने लगा था। यद्यपि, दक्षिण-पूर्व की अनेक संस्कृतियों (विशेषकर बोर्नियो, फिलिपाइंस और इंडोनेशिया) में चीन और दूसरे देशों के भट्टों के बने मिट्टी के बरतन, कुलागत संपत्तियों के रूप में सुरक्षित रखे गए हैं। दक्षिण पूर्व एशिया के अनेक संग्रहालयों में सिरेमिक के विशाल संग्रह मिलते हैं। भारत में भी, इतिहास के प्रारंभिक कालों की मिट्टी से बनी वस्तुएं प्राप्त होती हैं।

मृत्तिका के प्रमुख घटक ऐलुमिना और सिलिका हैं तथा इसमें अलग-अलग मात्रा में दूसरे खनिज होते हैं। यद्यपि अलग-अलग प्रकार की मृत्तिकाओं का संघटन भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। नमीदार मृत्तिका सुघट्य (इलास्टिक) होती है और इसे सरलता से मनोनुकूल आकार दिया जा सकता है। सूखने पर यह कठोर हो जाती है, पर पानी डालने पर यह फिर से मुलायम हो जाती है। भट्टे में, मिट्टी की वस्तुओं को पका लेने पर वे स्थायी रूप से कठोर हो जाती हैं और यदि इसे 605° सेल्सियस से अधिक तापमान पर पकाया जाता है तो इन पर पानी का प्रभाव भी नहीं पड़ता। भट्टे में पकाने पर मृत्तिका की सामग्री में अनेक परिवर्तन

होते हैं, जैसे निर्जलीकरण, आक्सीकरण तथा काचन।

सिरेमिक की वस्तुओं में भिन्नता, मिट्टी की किस्म और उसे पकाते समय प्रयुक्त ऊष्मा की मात्रा पर निर्भर करती है। प्राकृतिक और 'निर्मित' मृत्तिकाओं का रंग प्रायः स्लेटी और भूरा होता है। इन सामग्रियों को भट्टे में पकाते समय भट्टे का तापमान और वायुमंडल उनके रंगों में परिवर्तन कर देता है जो हल्का पांडुरंग, स्लेटी, लाली लिए भूरा होता है। तथापि कैओलिन की काफी मात्रा होने पर, जैसाकि पोर्सिलेन में होता है, सफेद मिट्टी पकाने के बाद भी सफेद रहती है।

मुख्य प्रकार के सिरेमिक बरतन मृत्तिका टेराकोटा, दृढ़भांड मृत्तिकाओं, पोर्सिलेनों को अलग-अलग तापमानों पर पकाया जाता है। इसके अलावा बरतनों को विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक या 'निर्मित' मिट्टियों से तैयार किया जाता है। इनके प्रमुख प्रकार हैं :

- भांड मृत्तिका, प्राकृतिक पांडुरंग या कभी गहरे भूरे रंग की मिट्टी से बने भांड मृत्तिका को प्रायः 1125° सेल्सियस पर पकाया जाता है। यह मृत्तिका छिद्रयुक्त होती है। काचित करने के बाद इनमें जल को धारण करने की क्षमता आ जाती है।
- टेराकोटा शब्द का अर्थ है 'पकी मिट्टी।' प्रायः यह प्राकृतिक मृत्तिका होती है और इसे 1015° सेल्सियस पर पकाया जाता है। इसे अधिकतर मूर्तियों और उपयोगी पात्रों को बनाने के काम में लाया जाता है।
- दृढ़भांड मृत्तिका को कभी-कभी प्राकृतिक मिट्टी से निर्मित किया जाता है। लेकिन, प्रायः इसे सम्मिश्रित मिट्टियों से बनाते हैं। इसे 1285° सेल्सियस पर पकाया जाता है। यह काचाभ और कठोर होती है और बिना काचित किए जल को धारण करने में सक्षम होती है।
- पोर्सिलेन, सफेद मिट्टी कैओलिन से निर्मित होती है। इसके बरतनों को लगभग 1350° सेल्सियस पर पकाने और काचन के लिए एक साथ रखा जाता है। पोर्सिलेन, काचाभ और बहुत कठोर होता है। सफेद रंग की वस्तुएं जब दृढ़भांड मृत्तिका से बनाई जाती हैं तब भट्टे का तापमान 1285° सेल्सियस और पोर्सिलेन के लिए 1350° सेल्सियस होता है। ये काचाभ होते हैं और इन्हें 'पोर्सिलेनियस स्टोनवेयर' कहा जाता है।

इन्हें बनाने की अनेक तकनीकें हैं। मिट्टी की वस्तुएं अनेक प्रकार से निर्मित की जा सकती हैं, जैसे उत्कीर्ण कर अथवा आकृतियां बनाकर। मिट्टी की लघु आकृतियों को साथ जोड़कर उनका बक्सा बनाना, सांचे में ढालना तथा कुम्हार

के चाक में। मुलायम गीली मिट्टी को चाक पर रखकर जब चाक को चलाया जाता है तो उंगलियां गीली मिट्टी को विभिन्न प्रकार के पात्रों का आकार देती हैं।

मिट्टी से निर्मित आकृतियों को काचित और अकाचित अनेक रूपों में अलंकृत किया जा सकता है। काचन, पिघलाई हुई धातुओं का लेप है और वह सिरेमिक्स की सतह को काचाभ बनाता है जिससे वह जलरोधी हो जाता है। लेकिन सामान्यतया रंग और सतह के परिष्कार से इसके सौंदर्य में वृद्धि हो जाती है। काचित करने के मूल उपादान सिलिका, जिसे गलाने पर कांच बन जाता है तथा एलूमिना हैं। मृत्तिका के दो प्रमुख घटकों को फ्लक्स के साथ मिलाकर उसके गलनांक को कम किया जाता है। यह तापमान सदैव वस्तुओं को पकाने के लिए निर्धारित तापमान से कम होता है। इसे मौलिक कृति कहा जाता है। फ्लक्स उन अनेक पदार्थों में से एक है जैसे सीसा या सोडा। सिरेमिक्स में विभिन्न प्रकार के रंगों के काचन को प्राप्त करने के लिए उनमें अनेक धातुओं को आक्साइड या कार्बोनेट्स या घुलनशील लवणों के रूप में मिलाकर प्राप्त किया जाता है। पहले से ही पकी (बिस्क) सामग्री या अपरिष्कृत कृति की सतह पर काचन लेपित कर, उन्हें आकार प्रदान कर सूखने के बाद उन्हें भट्टे में पकाया जाता है। थाइलैंड और भारत के टेराकोटा के खिलौने तथा विशाल प्रतिमाएं, बंगाल तथा इंडोनेशिया में बाली के वास्तु-अलंकरण में प्रयुक्त ईंट की पट्टिकाएं, थाइलैंड के काचित दृढ़भांड तथा इस्लामी वास्तुकला के वास्तु-अलंकरण, स्मारकों की सुंदर लेखों से युक्त काचित टाइलें तथा सिरेमिक्स की बनी अनेक वस्तुओं के नमूने विभिन्न क्षेत्रों के संग्रहालयों में प्राप्त होते हैं।

बिना पकी मिट्टी की वस्तुएं बहुत नाजुक होती हैं। इन पर जल का प्रभाव बड़ी शीघ्रता से पड़ता है। इन्हें जलयुक्त घोल से कदापि साफ नहीं करना चाहिए। इस प्रकार की सामग्रियों को प्रदर्शन या भंडारण के लिए किसी मंजूषा के अंदर सिलिका जैल लगाकर शुष्क वातावरण में सुरक्षित रखना चाहिए (देखें अध्याय 1)। प्रत्येक सामग्री को आवश्यकता के अनुकूल कृत्रिम रेजिनों या अन्य किसी दूसरी विधि से संसेचन, संरक्षण प्रयोगशाला द्वारा ही किया जाना चाहिए। रंगी हुई वस्तुओं अथवा मिट्टी की वस्तुओं को आर्द्रता के कारण जो हानि पहुंचती है उनसे रक्षा करने के लिए संरक्षण प्रयोगशाला के अधिकारियों को कला-इतिहासकारों से अवश्य ही परामर्श लेना चाहिए जिससे वस्तु पर कोई हानिकारक प्रभाव न पड़े। उदाहरणार्थ, कच्ची मिट्टी की सामग्री को भट्टे में पकाकर, उसे कठोर बनाकर परिरक्षित किया जा सकता है। पर ऐसा करना उन वस्तुओं के लिए वांछनीय नहीं है जिनका

ऐतिहासिक या सौंदर्यपरक महत्व हो, क्योंकि इस प्रक्रिया से वस्तुओं के रंग में परिवर्तन हो जाता है। यदि वस्तु की आकृति की रक्षा किसी अन्य विधि से करना संभव नहीं है तब उसे भट्टे में पकाना ही उसकी रक्षा का सर्वश्रेष्ठ उपाय है। मिट्टी की वस्तुओं को एक बार भट्टे में पकाने और उनमें उपस्थित लवणों को हटा लेने के बाद आसुत जल से धोया जा सकता है।

किसी भी तापमान में पकाई गई मिट्टी की वस्तुएं, बिना पकाई गई वस्तुओं की तुलना में अधिक टिकाऊ होती हैं। पर इन वस्तुओं को किसी भी प्रकार का आघात लगने से वे टूट या चटक जाती हैं।

संभावित टूट-फूट से बचाने के लिए इन्हें हत्थे या बाहर की ओर निकले हुए भागों, जैसे मस्तक या भुजा भाग से नहीं पकड़ना चाहिए। ये भाग काफी कमजोर होते हैं और इनमें इतनी अधिक मजबूती नहीं होती है कि वस्तु के पूरे भार को वहन कर सकें। ऐसा करने पर ये भाग टूट सकते हैं।

टेराकोटा, अकाचित भांड होता है। पकाने पर इसका रंग प्रायः पांडु या लाल होता है। आग में पकाने के बाद ये छिद्रयुक्त हो जाते हैं और इनकी सतहों पर धूल से धब्बे पड़ जाते हैं। इन धब्बों को निकालना काफी कठिन अथवा दुरूह होता है।

भूक्षेत्र के उत्खनन से प्राप्त सामग्रियों, अथवा बहुत लंबी अवधि तक जल के अंदर डूबी हुई पकी मिट्टी की सामग्रियों चाहे वे काचित ही क्यों न हों, में लवणों की मात्रा की अधिकता होने की संभावना अधिक रहती है। इन पात्रों से लवण की मात्रा को कम करने के लिए निक्षालन विधि का इस्तेमाल करना चाहिए, अर्थात् बहते हुए जल में इन्हें धोया जाना चाहिए।

काचित मिट्टी की वस्तुएं, बहुत नाजुक और कोमल होती हैं तथा इन्हें बड़ी सरलता से क्षति पहुंच सकती है। काचन कांच की तरह जरा-सा दबाव या प्रहार नहीं सह सकता। इसीलिए सिरेमिक्स की वस्तुओं पर जरा-सा भी झटका नहीं लगने देना चाहिए अन्यथा काचित सतह में दरार ही नहीं पड़ती बल्कि वे अलग भी हो सकती हैं। यदि काचित वस्तु का जरा-सा भी भाग खंडित हो जाता है तो उस भाग की तत्काल मरम्मत रेजिनी सामग्री जैसे पोलियस्टर रेजिन को टूटे हुए भाग के अंदर भरकर की जानी चाहिए। इस रेजिनी सामग्री का रंग काचन के रंग के समान होना चाहिए।

संग्रहालयाध्यक्ष की तुलना में पुरातत्ववेत्ताओं के सामने सबसे बड़ी समस्या सिरेमिक्स के टुकड़ों को जोड़ना होता है। यद्यपि, इस कार्य को संग्रहालयाध्यक्षों को भी करना पड़ सकता है। इसके लिए अत्यधिक धैर्य और सावधानी की

आवश्यकता है तथा इस कार्य को ऐसे अनुभवी शिल्पी द्वारा किया जाना चाहिए जो पलस्तर को भरने के काम में ही निपुण न हो, वरन् वस्तु की मूल सतह और पलस्तर के रंग में भी सामंजस्य स्थापित कर सके।

मिट्टी की पकी हुई और बिना पकी हुई सामग्रियों के रखरखाव के लिए अत्यंत सावधानी की आवश्यकता होती है। अनेक मिट्टी की वस्तुएं अचानक मेज या हाथ इत्यादि से गिरकर टूट जाती हैं (प्लेट 14)। इनके लिए, पहले से ही यह अपेक्षा की जाती है कि इनके रखरखाव में बहुत अधिक सावधानी बरती जाए। इन्हें साफ टिशू कागज से लपेटकर अथवा पॉलिथीन के थैलों में रखा जाना चाहिए। सिरेमिक्स की वस्तुओं से धूल हटाने के लिए मुलायम वस्त्र का प्रयोग किया जाना चाहिए। इनमें लगी हुई पपड़ियों को हटाने लिए, इनके ऊपर थोड़े समय के लिए गीले पैड रखने चाहिए अथवा पपड़ियों को हटाने के लिए संरक्षण प्रयोगशाला का परामर्श लेना चाहिए।

संग्रहालय में सुरक्षित अन्य सामग्रियों की तरह सिरेमिक्स की प्रत्येक सामग्री पर उसकी संख्या, मिटनेवाली स्याही से अवश्य अंकित की जानी चाहिए।



11

काष्ठ

काष्ठ, जैव पदार्थ की श्रेणी में आता है तथा इसके विघटन की विशेष संभावना रहती है (प्लेट 15)। इसके परिरक्षण के लिए बहुत अधिक देखभाल की आवश्यकता होती है। मनुष्य ने अपने विकास की प्रारंभिक अवस्था से ही, अपने रोजमर्रा के प्रयोग में आने वाली वस्तुओं, कला तथा अलंकरण सामग्रियों के निर्माण के लिए काष्ठ का प्रयोग किया। काष्ठ का प्रयोग खेती के उपकरणों, यातायात के साधनों तथा शस्त्रों के निर्माण के लिए भी किया जाता था। भवनों के दरवाजों, खिड़कियों तथा छज्जों का निर्माण प्रायः काष्ठ से ही किया जाता था। विश्व के समस्त संग्रहों में, काष्ठ की वस्तुओं का किसी न किसी रूप में अपना महत्वपूर्ण स्थान है। ऐसा प्रायः शिल्प संग्रहालयों या नृजातीय संग्रहालयों के विषय में सत्य है। कभी-कभी रथों जैसे विशाल वाहन कला संग्रहालयों में दर्शनार्थ रखे रहते हैं। कुछ संग्रहालयों, जैसे नई दिल्ली के शिल्प संग्रहालय में काष्ठ के संपूर्ण भवन को ज्यों का त्यों अपने मूल स्थान से हटाकर संग्रहालय परिसर में स्थापित कर दिया गया है।

काष्ठ यद्यपि देखने में दृढ़ और टिकाऊ प्रतीत होता है, पर इसके विघटन के अनेक प्राकृतिक और मानवी कारण होते हैं। यह बड़ी शीघ्रता से कीटों और सूक्ष्मजीवों का शिकार हो जाता है। इस पर जलवायु तथा जलवायु जन्य परिवर्तनों का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। काष्ठ एक ज्वलनशील सामग्री है। इससे निर्मित संरचनाओं को आग तत्काल नष्ट कर देती है। अन्य जैविक सामग्रियों की तरह, काष्ठ से बनी सामग्रियों के लिए अत्यधिक सावधानी की आवश्यकता होती है। हमारे लिए सर्वप्रथम काष्ठ की प्रकृति को जानना आवश्यक है।

काष्ठ की संरचना रेशेदार और कोशिकीय होती है। हरे वृक्ष को काटते समय उसमें बहुत अधिक मात्रा में जल पाया जाता है। जब उसे खुले स्थान में छोड़ दिया जाता है तो उसमें जल की मात्रा धीरे-धीरे कम होने लगती है। जब वृक्ष में जल की मात्रा समाप्त हो जाती है तो उसके जल की मात्रा का संतुलन, वातावरण के अनुरूप हो जाता है। ऐसी स्थिति में उस वृक्ष के काष्ठ को परिपक्व काष्ठ कहा जाता है। जब काष्ठ आर्द्र वायुमंडल से नमी प्राप्त करता है तो उसके आकार में वृद्धि होने लगती है और जब उसके अंदर की नमी वाष्पित होने लगती है तब काष्ठ का आकार भी सिकुड़ने लगता है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक मौसमी परिवर्तन अथवा आपेक्षिक आर्द्रता के घटने और बढ़ने से काष्ठ के आकार में वृद्धि और कमी होने लगती है। यदि किसी काष्ठ के बाहरी भाग को शुष्क वायुमंडल में रखा जाता है तो उसके भीतरी भाग की तुलना में बाहरी भाग शीघ्र सूख जाता है और काष्ठ की बाहरी परतों में तनाव उत्पन्न होने लगता है। काष्ठ पर उत्पन्न तनाव से उसकी सतह की परतों में दरारें पड़ जाती हैं (प्लेट 16)।

आर्द्र परिस्थितियों में काष्ठ की स्थिति स्थिर रहती है और यदि इसे शुष्क परिस्थितियों में स्थानांतरित किया जाता है तो इसमें दरारें पड़ने लगती हैं। जब प्रदर्शन के लिए काष्ठ की वस्तुओं को एक प्रकार की जलवायु से विपरीत प्रकार की जलवायु में भेजा जाता है तो ऐसी ही स्थिति पैदा होती है।

आर्द्र-शुष्क जलवायु वाले क्षेत्रों में आर्द्रता की मात्रा में काफी उतार-चढ़ाव होता रहता है जिसका काष्ठ की वस्तुओं पर अत्यंत हानिकारक प्रभाव पड़ सकता है। इसके निराकरण का सबसे उत्तम उपाय यह है कि प्रदर्शनी-कक्षों और संग्रह-क्षेत्रों के भीतरी भागों की सूक्ष्म-जलवायु का स्थिरीकरण, वातानुकूलन द्वारा किया जाए। कक्षों की आर्द्रता की सीमा 45 से 65 प्रतिशत के बीच रखनी चाहिए। काष्ठ की वस्तुओं के संग्रह से पूर्व चौबीस घंटे की अवधि आवश्यक होती है।

वातानुकूलन की व्यवस्था हो जाने पर भी, कमरों के अंदर समुचित वायु-संचालन के लिए बिजली के पंखों का प्रयोग आवश्यक है। अन्यथा, उसी कक्ष के विभिन्न स्थानों जैसे, किनारे, फर्श-क्षेत्रों की सूक्ष्म-जलवायु में विभिन्नता रह सकती है।

प्रायः पेंट किए हुए काष्ठ के वक्र आकार के बने पैनलों में यह समस्या उत्पन्न होती है कि उनके सामने के भाग अवतलाकार रूप ले लेते हैं। पैनल के सामने और पृष्ठ भागों के वक्राकार रूप ले लेने का प्रमुख कारण, उनका वातावरण की आर्द्रता को असमान रूप से अवशोषित करना है। पैनल की सतह के मुखभाग में पेंट होने के कारण, वह थोड़ी मात्रा में आर्द्रता को ग्रहण करता

है जबकि पैनल का बिना पेंट किया हुआ पिछला भाग अधिक आर्द्रता ग्रहण करता है जिसके कारण पैनल के दोनों पार्श्वों में असमान विस्तार होने लगता है। उसके इस असमान व्यवहार पर रोक लगाने के लिए पैनल के पिछले भाग में जल-प्रत्याकर्षी मिश्रण जैसे मोम और रेजिन का लेप लगाया जा सकता है। यदि पैनल का आकार टेढ़ा होकर वक्राकार बन गया है तो उसे समतल करने का प्रयास नहीं किया जाना चाहिए, ऐसा करने से उसके टूटने की संभावना रहती है।

यदि काष्ठ-सामग्री काफी लंबी अवधि तक नमी और स्थिर वातावरण में रखी रहती है तो उसमें फंगस या कवक लग सकता है जिसके प्रभाव से काष्ठ की सतह कमजोर हो जाती है। काष्ठ की वस्तुओं में एक अत्यंत हानिकारक कवक का आक्रमण हो सकता है जिसे शुष्क विगलन या ड्राइ रॉट कहा जाता है। इस कवक से प्रभावित काष्ठ, मुलायम, स्पंजी और हल्का हो जाता है। काष्ठ पर कवक की वृद्धि की रोकथाम के लिए तत्काल परिरक्षण प्रयोगशाला के अधिकारियों से संपर्क किया जाना चाहिए। इस बीच कवक की संभावी वृद्धि की रोकथाम के लिए प्रभावित काष्ठ को छाया में सुखाकर रखा जा सकता है। काष्ठ की वस्तुओं में एक प्रतिशत आर्थोफिनाइल फिनोल को एथिल एल्कोहल के घोल में मिलाकर लगाने से कवक की वृद्धि पर रोक लग जाती है।

कीट, काष्ठ के परम शत्रु हैं। इनमें दीमक सर्वोपरि है। दीमक की रोकथाम के विषय में विस्तार से अध्याय 3 में जानकारी दी गई है।

काष्ठ के लिए हानिकारक, दूसरे प्रकार के कीटों में मुख्यतया भृंग आते हैं (प्लेट 17)। काष्ठचूर्णकारी भृंग की यह प्रकृति होती है कि वे काष्ठ के भीतरी भाग में सक्रिय रहते हैं और जब तक काष्ठ को अत्यधिक क्षति नहीं हो जाती तब तक इस संबंध में कुछ ज्ञात ही नहीं हो पाता। जब तक आटे की तरह का महीन पाउडर काष्ठ के अंदर बने हुए छिद्रों से नहीं निकलता, तब तक इनकी उपस्थिति का आभास नहीं होता। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर केवल संरक्षण रसायनज्ञ द्वारा प्रभावित काष्ठ के छिद्रों में एक भाग कार्बन डाइसल्फाइड और चार भाग कार्बन टेट्राक्लोराइड के मिश्रण के घोल का धूमन कर इनका उपचार किया जाना चाहिए।

कभी-कभी काष्ठ की वस्तुओं में स्थूल अभिवृद्धि हो जाती है। प्रायः ऐसा काष्ठ में पूर्व लेप की अपघटित परत अथवा विवर्ण तेल या रेजिन की संरक्षी कोटिंग की उपस्थिति से होता है। पहले काष्ठ की संरचनाओं को हर वर्ष पेंट करने की प्रथा थी जिससे उसमें नयापन बना रहे और वे देखने में सुंदर लगें। काष्ठ की इन संरचनाओं में कौन-सा पेंट इस्तेमाल किया गया था और उस पेंट

को किस विलायक से निकाला जाए, इसका निर्धारण प्रयोगशाला के अधिकारी परीक्षण के उपरांत करते हैं और उसके बाद पेंट को काष्ठ की संरचना से हटाया जाता है।

खुदाई के दौरान, जल से भीगी हुई काष्ठ की सामग्रियां प्राप्त होती हैं। इन वस्तुओं को उपचार के लिए, प्रयोगशाला में भेजने से पहले काष्ठ सामग्री को जल में डुबोकर अथवा पानी से भीगे बोरे में लपेटकर रखना चाहिए। उत्खनन में मिली इस प्रकार की काष्ठ की वस्तुएं एकदम से सूखने की स्थिति पर सिकुड़ सकती हैं और उनका आकार असमतल, विरूपित अथवा नष्ट हो सकता है।

जल से प्रभावित, काष्ठ की वस्तुओं के लिए, प्रयोगशाला में प्रयुक्त सबसे कारगर प्रविधियां हिम-शुष्कन प्रविधि अथवा पॉलिइथिलीन प्रविधि है। हिम-शुष्कन प्रविधि में काष्ठ को एक विशेष प्रकार के हिमीकरण कक्ष में रखा जाता है, जिसमें काष्ठ के जल को हिमशीतित कर निर्वात उर्ध्वपातन द्वारा अलग किया जाता है। दूसरी प्रविधि में, काष्ठ को पॉलिइथिलीन ग्लाइकोल के घोल में रख दिया जाता है जो धीरे-धीरे काष्ठ के अंदर उपस्थित जल की मात्रा को समाप्त कर देती है।

काष्ठ वस्तुओं के रखरखाव में सावधानियां

यद्यपि, काष्ठ की वस्तुएं देखने में ठोस होती हैं और इनकी सतह भी कठोर दृष्टिगोचर होती है, पर वास्तव में ये अत्यंत नाजुक होती हैं। इनके रखरखाव और भंडारण में बहुत अधिक सावधानी बरतनी पड़ती है। काष्ठ की वस्तुओं की सफाई हमेशा मुलायम ब्रश से की जानी चाहिए।

काष्ठ की वस्तुओं को पालिथीन शीट में लपेटने के उपरांत काष्ठ की अलमारियों में रखना चाहिए, न कि स्टील की अलमारियों में क्योंकि काष्ठ ऊष्मा का कुचालक है और इसमें जलवायुगत विभिन्नताओं को सहने की सामर्थ्य है।

काष्ठ की कीटों से रक्षा के लिए, जिन अलमारियों में इन्हें रखा गया है उनमें गेमेक्सीन की तरह के कीटनाशी रसायनों को अवश्य छिड़कते रहना चाहिए।



12

वस्त्र

वस्त्रों की गणना, संभवतया उन सामग्रियों में की जाती है जो ह्रास के प्रति अत्यंत संवेदनशील होती हैं। सभ्यता की प्रारंभिक अवस्था में मनुष्य ने स्वयं को ठंड और गर्मी से बचाने के लिए किसी वस्तु से अपने शरीर को ढंकने की आवश्यकता अनुभव की होगी। अतः इसमें आश्चर्य नहीं कि विभिन्न संग्रहालयों और निजी संग्रहों में हमें सूती धोतियों से लेकर अत्यधिक अलंकृत सिल्क या ऊनी परिधानों के अनेक रूप देखने को मिलते हैं। ये परिधान कशीदाकारी किए हुए शाल या जरीदार अंगरखे और चोलियां इत्यादि हो सकते हैं। प्रारंभिक काल में मनुष्य संभवतया अपने वस्त्र पेड़ों की छालों या पत्तियों से निर्मित करता होगा। उस समय अवश्य एक क्रांति उत्पन्न हुई होगी जब उन्हें कातने और बुनने की प्रविधि का ज्ञान प्राप्त हुआ। वस्त्र मानव की एक मूल आवश्यकता है। यही कारण है कि मानव सभ्यताओं के समस्त कालों में बहुत बड़ी मात्रा में उनका उत्पादन होता रहा। रंगीन वस्त्रों का निर्माण तब से प्रारंभ हुआ जब मनुष्य ने पौधों से रंगों को प्राप्त करना सीखा और निकाले गए इन रंगों को सफलतापूर्वक वस्त्रों में प्रयोग किया। आगे चलकर कृत्रिम रंगों का प्रयोग किया जाने लगा क्योंकि इन रंगों का प्रयोग करने में कोई कठिनाई नहीं होती थी। अतः प्राकृतिक रंगों का प्रयोग लगभग समाप्त हो गया।

जिन रेशों से वस्त्रों का निर्माण किया जाता है वे या तो प्राकृतिक होते हैं या मानव निर्मित। वनस्पतियों, पशुओं तथा कीटों से प्राप्त रेशे जैसे रूई, सन, जूट, ऊन, सिल्क आदि प्राकृतिक रेशों की श्रेणी में आते हैं। जिनका निर्माण कारखानों में मनुष्य करते हैं और जिनमें रेशेदार सामग्री का प्रयोग नहीं किया

जाता है, उन्हें मानव निर्मित रेशे या फाइबर्स कहा जाता है। उदाहरणार्थ, नाइलन, पॉलियस्टर या टेरेलीन आदि जिनका आविष्कार हाल ही में हुआ। हमारे लिए सबसे महत्वपूर्ण तथा चिंता का विषय प्राकृतिक रेशों से निर्मित उन वस्त्रों की समुचित देखभाल है जो संग्रहालयों और निजी संग्रहों में आरक्षित हैं।

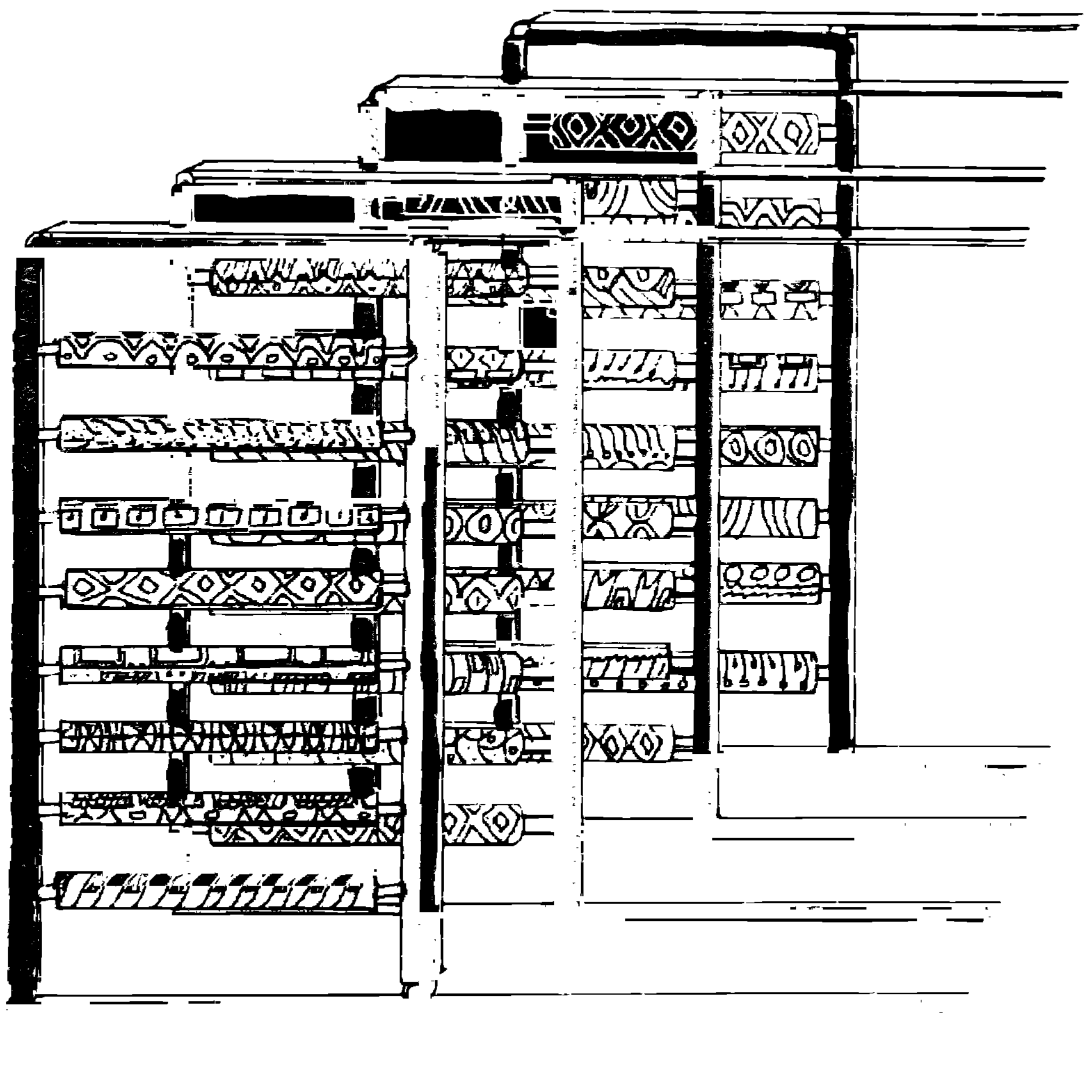
कार्बनिक पदार्थ की श्रेणी में आने से वस्त्रों को अनेक कारणों से क्षति पहुंचती है। हर प्रकार के वस्त्रों को चाहे वे रंगीन हों या सादे, प्रकाश असाधारण क्षति पहुंचाता है। प्रकाश रेशे से निर्मित वस्त्रों को क्षीण ही नहीं बनाता, बल्कि वह रंगीन वस्त्रों के रंगों को फीका भी कर देता है। रंगों को प्रकाश कितना प्रभावित करता है, इसका सर्वोत्तम उदाहरण लटके हुए पर्दों के उन बाहरी भागों में दिखाई देता है जहां उन पर सूर्य की किरणें सीधी पड़ती हैं। पर्दों का बाहरी ओर का रंग, भीतरी भाग के रंग की तुलना में अधिक फीका पड़ जाता है। प्रकाश में व्याप्त परा-बैंगनी किरणें वस्त्रों को दुर्बल बना देती हैं। दूसरी ओर, रंगों के फीके पड़ने का प्रमुख कारण प्रकाश का दृश्य तरंग-दैर्ध्य है, क्योंकि प्रत्येक वस्त्र, प्रकाश के प्रति अत्यंत संवेदनशील होता है। अतः इनके लिए नीचे दी गई सावधानियों को ध्यान में रखना आवश्यक है :

- प्रदीप्ति की तीव्रता को कम रखा जाए;
- परा-बैंगनी अवशोषण फिल्टरों का प्रयोग प्रकाश-स्रोतों पर किया जाना चाहिए; और
- उन वीथिकाओं में जहां पर वस्त्रों को प्रदर्शन के लिए रखा गया है, प्रकाश को जिंक आक्साइड या टिटेनियम ट्रिआक्साइड से लेपित सतह से परावर्तित किया जाए। इसका मुख्य कारण यह है कि प्राकृतिक प्रकाश में परा-बैंगनी किरणों का अनुपात अधिक होता है। अतः वीथिकाओं में, जहां ऐसे वस्त्र रखें हों, कृत्रिम प्रकाश की व्यवस्था होनी चाहिए।

सूती, हैम्प, पटसन इत्यादि के वस्त्रों में कवक या फंगस की अभिवृद्धि होती है। कवक वस्त्र को कमजोर ही नहीं बनाते हैं, वरन् उन पर ऐसे निशान छोड़ जाते हैं जिन्हें हटाना बड़ा कठिन होता है (प्लेट 18)। वस्त्रों में कवक की अभिवृद्धि को रोकने के लिए, उनका शुष्क वातावरण में संचय किया जाना चाहिए। उनकी धूल से रक्षा की जानी चाहिए और उनके भंडारण स्थलों को समय-समय पर धूमित किया जाना चाहिए। वस्त्रों को विभिन्न प्रकार के कीट भी हानि पहुंचाते हैं। दीमक में विभिन्न प्रकार के वस्त्रों को विनष्ट करने की सामर्थ्य है। प्रत्येक व्यक्ति ऊन-शलभों के विषय में जानता है कि वे ऊन के वस्त्रों को हानि पहुंचाते हैं। कुछ भृंगों की किस्में जैसे डरमेसटिड भृंग ऊन और सिल्क के वस्त्रों को हानि

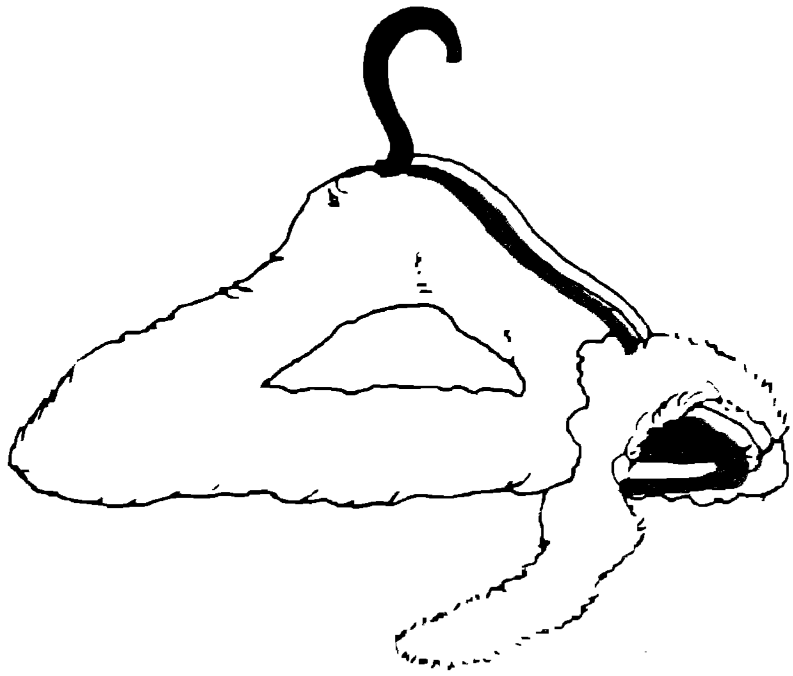
पहुचाते हैं। संग्रह की गई वस्तुओं का समय-समय पर निरीक्षण करने के साथ ही भंडारण स्थलों में कीटनाशी धूमनों, जैसे नेफ्थलीन की गोलियों और पैराडाइक्लोरोबेंजीन का प्रयोग किया जाना चाहिए।

वस्त्र अत्यंत नाजुक होते हैं। अतः जहां तक संभव हो उनकी तहें नहीं लगानी चाहिए क्योंकि वस्त्र तहों पर कमजोर होकर फटने लगते हैं। उन्हें रोलरों में लपेटकर रखना चाहिए जिससे वस्त्रों को हानि न पहुंचे (चित्र 18)। इन रोलरों को फ्रेमों में रखा जाता है, जिन्हें जगह बचाने के लिए केस्टरों पर सरकाया जा सकता है। प्रत्येक रोलर को नामांकित किया जा सकता है। यह अधिक उपयुक्त है कि छोटे वस्त्रों को ऐसी दराजों में रखा जाए जो कम गहरी हों। यदि वस्त्रों को तह करना पड़े, तो उनकी तहें बहुत तीखी नहीं होनी चाहिए और तहों के बीच में टिशू कागज रख देना चाहिए।



चित्र 18. वस्त्र भंडार कक्ष। रोलरों पर सपाट वस्त्रों को लपेटा गया है।

वस्त्रों को उनके अलग-अलग प्रकार, आकार और नाप के कारण भंडारित करने में समस्या उत्पन्न होती है। इस प्रकार के वस्त्रों को रखने का एक तरीका, वस्त्रों को गद्दीदार हैंगरों में लटकाने के बाद, उन्हें पालिथीन शीट में लपेटा जा सकता है (चित्र 19)। हालांकि, इस तरीके से, हैंगर के उस भाग पर अधिक जोर पड़ता



चित्र 19. गद्दीदार हैंगर का नमूना।

है जहां पर उन्हें अवलंब मिलता है। वस्त्रों पर इस विधि से जो अधिक जोर पड़ता है, उससे उनकी रक्षा के लिए, उनकी तहों में टिशू कागज के पैड या शीटों को रख देना चाहिए। वस्त्रों को समतल स्थिति में रखने के लिए, उन्हें लकड़ी की दराजों या अलमारियों में रखना अधिक उपयुक्त है।

हर प्रकार के वस्त्रों में बड़ी सरलता से दाग लग जाते हैं। उन स्थानों में, जहां पर वस्त्रों को रखा गया हो, खाने या पीने की वस्तुओं, स्याही अथवा दूसरे प्रकार की तरल सामग्रियों को नहीं रखना चाहिए। धातु की चिमटियों, पिनों अथवा स्टेप्ल का उपयोग वस्त्रों के पहचान-पत्रक के लिए कदापि नहीं किया जाना चाहिए। कपड़े के टैगों पर, उनकी पहचान संख्या लिखी जानी चाहिए और पहचान-पत्रकों को कपड़े पर सुई और धागे से सिल सकते हैं। इन वस्त्रों का थोड़े-थोड़े समय के बाद संरक्षण प्रयोगशाला द्वारा अवश्य निरीक्षण किया जाना चाहिए।

कशीदाकारी या जड़ाऊ काम वाले रंगीन अथवा सैलुलोसी वस्त्रों में अम्लता की उपस्थिति अत्यंत विनाशकारक सिद्ध होती है और उन पर कुछ इस प्रकार का प्रभाव छोड़ती है जैसे वे आग में जलकर काले हो गए हों (प्लेट 19)।

वस्त्रों को मजबूती देने के लिए अनेक विधियां हैं। उनमें प्रमुख हैं आरोपण, लैमीनेशन तथा संसेचन। बाद की दो विधियों को केवल संरक्षण प्रयोगशाला में ही किया जाना चाहिए। वस्त्रों को मजबूती प्रदान करने के लिए, जीर्ण वस्त्रों के पिछले भाग में नए वस्त्रों का अस्तर लगाया जाना चाहिए। इसके लिए सुई, धागे को इतनी अधिक कुशलता से प्रयोग में लाना चाहिए कि पुराने नाजुक वस्त्र को मजबूत आधार मिले तथा उनकी सिलाई इतनी बारीकी से की जाए कि वह दिखाई ने दे।



13

पांडुलिपियां तथा पुस्तकें

सभ्यता के प्रारंभिक काल से लेखन के लिए अनेक सामग्रियों का प्रयोग किया जाता रहा है। कागज के आविष्कार से पहले, दक्षिण और दक्षिण-पूर्ण एशिया में लेखन सामग्री के रूप में ताड़पत्र का बहुत अधिक प्रचलन था। इन क्षेत्रों के संग्रहालयों तथा पुस्तकालयों में ताड़पत्र पांडुलिपियों का विशाल भंडार सुरक्षित है। उत्तरी भारत के अनेक क्षेत्रों में भोजपत्रों का प्रयोग किया जाता था। मिस्र में लेखन के लिए पेपीरस का अत्यधिक प्रयोग होता था। कुछ क्षेत्रों में तो पशुओं की खाल से चर्मपत्र बनाया जाता था और लेखन सामग्री के रूप में इसका बहुत अधिक प्रचलन था। पर भारत में इसका बहुत अधिक प्रचलन नहीं था। कागज के आविष्कार के बाद, लेखन के लिए प्रयुक्त अन्य सामग्रियों का प्रयोग धीरे-धीरे समाप्त होने लगा और पांडुलिपियों या पुस्तकों को कागज पर लिखा जाने लगा। कागज की पांडुलिपियों और पुस्तकों तथा प्रलेखों की बहुत बड़ी संख्या, संग्रहालयों, पुस्तकालयों और अभिलेखागारों इत्यादि में उपलब्ध है।

भोजपत्र

भोज (भुर्ज) वृक्ष, ऊंचाई वाले क्षेत्रों में पाए जाते हैं। इन वृक्षों की छाल के नीचे के भाग को पतली-पतली परतों में अलग किया जा सकता है। यह कागज की तरह लचीला होता है। भोज वृक्ष की इन परतों को भोजपत्र कहते हैं जिन पर स्याही से लिखा जाता था। प्रायः भोज वृक्ष की परतों को भुर्ज छाल कहा जाता है, पर वास्तव में यह छाल नहीं होती है। यह छाल के नीचे का भाग होता है, जिसकी परतों को एक के बाद एक क्रम से हटाया जाता है। इन्हें लेखन सामग्री

के रूप में प्रयोग में लाने के लिए धीरे-धीरे सुखाया जाता था। उन पर तेल लगाया जाता था तथा पालिश की जाती थी। इस तरह से भोज वृक्ष से बड़ी-बड़ी शीटें तैयार की जाती थीं जो वृक्ष की अनेकानेक परतों से तैयार की जाती थीं। ये प्राकृतिक गोंद और लकड़ी की गांठों से जुड़ी होती थीं (प्लेट 20)। पांडुलिपियों को दो लकड़ी की तख्तियों के बीच में रखा जाता था जिसके चारों ओर डोरी लगी होती थी जो भोजपत्रों के पृष्ठ के मध्य से होती हुई जाती थी। इससे पांडुलिपि को बांधते थे।

ज्यों-ज्यों पांडुलिपियां पुरानी होने लगती हैं, भोजपत्र कमजोर और भंगुर होने लगते हैं (प्लेट 21)। इसका कारण भोजपत्र के अंदर जो परतें होती हैं, उनकी आपस में जुड़े रहने की शक्ति कम हो जाती है। इनके सही परीक्षण और उपचार के लिए संरक्षण-प्रयोगशाला के विशेषज्ञों से परामर्श करना आवश्यक है।

भोजपत्रों की यह प्रकृति होती है कि यदि उन्हें काफी लंबे समय तक आर्द्र वातावरण में रखा जाए तो वे आपस में चिपक जाते हैं। इसलिए पांडुलिपियों के हर पृष्ठ की समय-समय पर जांच की जानी चाहिए और उन्हें मुलायम ब्रश से साफ करने के बाद सुखाना चाहिए।

कागज की तरह भोजपत्रों में अनेक प्रकार के दाग बड़ी सरलता से पड़ जाते हैं। इन दागों को भोजपत्र के बहुत नाजुक होने के कारण सरलता से हटाया नहीं जा सकता। भोजपत्रों की सुरक्षा के लिए उनके रखने के स्थान की सही वात-व्यवस्था, समय पर उनका धूमन तथा सही ढंग से उनकी सफाई आवश्यक है। अतः भोजपत्रों की पांडुलिपि को मजबूत गत्तों के बीच, साफ टिशू कागज से लपेटकर रखना चाहिए। ये मजबूत गत्ते पांडुलिपि के आकार से थोड़े बड़े होने चाहिए। अंत में विशेष सुरक्षा के लिए पांडुलिपि की पोथियों को कपड़े से लपेटकर रखा जा सकता है।

तालपत्र पांडुलिपियां

कागज के आविष्कार से पहले, समस्त दक्षिण और दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों में तालपत्र लेखन कार्य के लिए सबसे महत्वपूर्ण सामग्री था (प्लेट 22)। तालपत्रों को सबसे पहले सुखाया जाता था। उसके बाद उन्हें पानी में उबाला जाता था और अंत में फिर से सूखने के लिए रखा जाता था। तालपत्रों को आवश्यकतानुसार एक निश्चित आकार में काटा जाता था। यह एक सामान्य विधि थी, लेकिन पत्तों को तैयार करने की विभिन्न प्रक्रियाएं अलग-अलग क्षेत्रों में विकसित थीं।

तालपत्र आकार में लंबे पर संकरे होते है। कभी-कभीं दो या उससे अधिक

पत्तियों को आपस में मिलाकर और एक साथ सिलकर चौड़े लेखन-पत्र तैयार किए जाते थे।

तालपत्रों पर लिखने के लिए अथवा चित्र बनाने के लिए धातु की नुकीली शलाका या कलम और स्याही का प्रयोग उसी तरह किया जाता था जिस प्रकार कागज पर किया जाता है। पांडुलिपि के पन्नों को बांधने के लिए, उनके मध्य भाग या दोनों ओर छिद्र बनाकर उनके बीच में एक धागा डाला जाता था जिससे पांडुलिपि के पन्ने आपस में बंधे रहें। पांडुलिपियों को प्रायः लकड़ी की मजबूत तख्तियों के मध्य रखा जाता था, जिन्हें प्रायः अलंकृत या चित्रित किया जाता था।

समय बीतने के साथ-साथ तालपत्र भंगुर होने लगते हैं और जरा सा भी मोड़ने पर वे टूट जाते हैं (प्लेट 23)। ऐसा उन्हीं स्थितियों में होता है जब वायुमंडल बहुत शुष्क होता है। भंगुर तालपत्र पांडुलिपियों को छोटे बक्सों में रखना चाहिए जिससे उन्हें ज्यादा छेड़ना ना पड़े। यदि पांडुलिपियों के पन्ने बहुत भंगुर हो गए हों और उनकी सामर्थ्य शक्ति बहुत क्षीण हो चुकी हो तो उनके सही उपचार के लिए प्रयोगशाला के विशेषज्ञों से अवश्य परामर्श लेना चाहिए।

सिट्रोनेला तेल या कपूर के तेल का तालपत्रों में प्रयोग करने से उनमें फिर से लचीलापन लाया जा सकता है। श्रीलंका में एक स्थानीय रेजिन तेल, जिसे वहां की भाषा में दुल-दुल तेल कहते हैं, का प्रयोग इस काम के लिए किया जाता है।

तालपत्र का सबसे नाजुक भाग उसके किनारे हैं। अधिकतर, इन्हें हानि तभी पहुंचती है जब इन्हें बार-बार देखा जाता है (प्लेट 24)। अतः यह जरूरी है कि तालपत्रों को सख्त गत्तों के बीच में रखा जाए। गत्तों का आकार पत्रों से थोड़ा बड़ा होना चाहिए जैसा कि प्राचीन काल में होता था। पांडुलिपियों को बार-बार देखने की बजाए उनकी माइक्रो-फिल्में बना लेना उचित है।

कीट कागज की अपेक्षा तालपत्रों को कहीं अधिक क्षति पहुंचाते हैं (प्लेट 25)। इसका कारगर इलाज वाष्पित कीटनाशी धूमन और कीटनाशी घोलों का प्रयोग है। जिन अलमारियों और ताकों में तालपत्रों की पांडुपिलियां रखी हुई हों उनमें एक प्रतिशत लिंडेन घोल डालकर उनका उपचार किया जाना चाहिए।

कागज

वास्तविक कागज का सबसे पहले आविष्कार चीन के हिजरे त' सेई लुम ने 105 ई. में किया था। यह कागज कमजोर नमदानुमा था, जिसे वनस्पति के रेशों, चिथड़ों

आदि को बहुत अच्छी तरह कूटकर उसकी लुगदी को सपाट, छेदवाले सांचों में ढालकर बनाया गया था। चीन देश से कागज बनाने की यह कला, कोरिया और जापान देशों से होते हुए मध्य एशिया और फारस में फैली। यह कहा जाता है कि 751 ई. में चीनियों ने तुर्किस्तान से एक अत्यंत घमासान लड़ाई लड़ी, जिसमें कागज बनाने की कला में पारंगत अनेक चीनी लोग बंदी बनाए गए। उन्हें कागज बनाने के लिए बाध्य किया गया और इस तरह समरकंद में कागज बनाने की कला का प्रारंभ हुआ। समरकंद का कागज मशहूर था। भारत में कागज का निर्माण दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दी में होने लगा।

कागज का निर्माण रेशेवाली वस्तुओं जैसे कपास, काष्ठ, बांस, धान के तिनकों और इसी प्रकार की अन्य सामग्रियों से किया जाता है। इन सामग्रियों के रेशों को यांत्रिक विधि से अलग करने के बाद, साफ करके पानी में डुबो दिया जाता है। इन्हें जालीदार बड़ी कम गहरी नादों में जल में डुबोकर रखा जाता है और उनके फाइबरों को पानी से बाहर निकालकर उनसे कागज के पन्नों को बनाया जाता है। इसके बाद उनके ऊपर जिलेटीन, मांड या रेजिन के घोल चढ़ाकर, लिखने के लिए कागज का धरातल तैयार किया जाता है।

कागज के रेशों या फाइबर के लिए सबसे महत्वपूर्ण संघटक सैलुलोस और लिग्निन हैं। लिग्निन सैलुलोस की तुलना में क्षतिग्रस्त शक्तियों से कहीं शीघ्र प्रभावित होता है। इसलिए समस्त सैलुलोस कागज अर्थात चिथड़ों से बनाए गए कागज, दूसरे प्रकार के कागजों की तुलना में परिरक्षण की दृष्टि से अधिक उपयुक्त माने जाते हैं।

प्राचीन काल में, स्याही का निर्माण कार्बन से किया जाता था। यह स्याही अधिक टिकाऊ होती थी तथा कागज को प्रभावित या काला नहीं करती थी, जैसा कि लोह-गॉल स्याही (प्लेट 26) किया करती थी।

समय के प्रभाव से कागज में पीलापन आने लगता है और वह भंगुर होने लगता है। यदि कागज कमजोर पड़ गया हो तो विशेषज्ञों से इस बारे में परामर्श लेकर, उसके उपचार के यथोचित उपाय किए जाने चाहिए।

कागज को कमजोर बनाने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका कागज में अम्लता की उपस्थिति मानी जाती है। यहां तक कि थोड़ी मात्रा में भी उसकी उपस्थिति कागज के क्षय का कारण बन जाती है। कागज को बनाते समय इन रसायनों को न हटाने से अथवा उसकी प्रोसेसिंग करते समय वायुमंडल में सल्फयूरिक गैस की उपस्थिति के कारण, कागज में अम्लता की वृद्धि होने लगती है।

अम्लता से प्रभावित पांडुलिपियों का उपचार संरक्षण प्रयोगशालाओं में किया

जाना चाहिए। प्रयोगशाला में उनसे अम्लता को हटाने के लिए सामान्यता केल्शियम बाइकार्बोनेट के घोल को पानी में मिलाकर उनका उपचार किया जाता है।

प्रायः गलत रखरखाव के कारण पांडुलिपियों में पानी के दाग लग जाते हैं, जो भंडारण में की जाने वाली गलतियों के कारण होता है। पांडुलिपियों को कभी तेल लगे या चिकने हाथों से नहीं छूना चाहिए।

अक्सर कागज की सतह या उसके पृष्ठ भाग में छोटे-छोटे भूरे या काले दाग पड़ जाते हैं, जिन्हें अंग्रेजी में फाक्सिंग कहा जाता है। यह एक सामान्य अभिव्यक्ति है और प्रायः अब इसका प्रयोग नहीं होता है (प्लेट 27)। नमीवाली जलवायु के कारण कागज में भूरे रंग के चकत्ते पड़ जाते हैं। मक्खियों और कीटों के मल से भी पांडुलिपियों में काले धब्बे पड़ जाते हैं। बहुत-सी पांडुलिपियों को लोहे के बक्से में सही तरीके से लपेटकर न रखने के कारण भी उनमें जंग या मोरचा लग जाता है। इन धब्बों को पांडुलिपियों से हटाने के लिए विरंचक कारकों अथवा ब्लीचिंग एजेंटों जैसे कठोर उपायों को प्रयोग में लाया जाता है। यद्यपि, इनके प्रयोग से कागज पर बहुत हानिकारक प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार के उपचार केवल संरक्षण प्रयोगशाला में ही किए जाने चाहिए।

कागज के दूसरे प्रमुख शत्रुओं में विभिन्न प्रकार के कीट होते हैं। इन कीटों में सिल्वर फिश और पुस्तक कृमि प्रायः पांडुलिपियों को नष्ट कर देते हैं। अतः प्रदर्शनी तथा भंडारण में रखी गई इन सामग्रियों की नियमित जांच करना आवश्यक है जिससे इनमें पाये गये कीटों को तत्काल समाप्त किया जा सके।

दीमक से काष्ठ की वस्तुओं के साथ-साथ कागज की वस्तुओं को भी क्षति पहुंचती है। पुस्तकालयों और अभिलेखागारों को दीमक-प्रतिरोधी बनाना बहुत आवश्यक है।

कागज का यह गुण है कि उसमें कवक शीघ्र लग जाता है, जिसका पता हमें पांडुलिपियों की जिल्दों और उनके पृष्ठों पर पड़े हुए हरे रंग के चकत्तों से लगता है (प्लेट 28)। कवक की वृद्धि को रोकने का सबसे कारगर उपाय वायुमंडल की आपेक्षिक आर्द्रता का स्तर 60 प्रतिशत से कम रखना है। इसके लिए वातानुकूलन और निआर्द्रीकारकों का प्रयोग किया जा सकता है।

यदि कोई पांडुलिपि दुर्घटनावश पानी में भीग जाती है तो उसे तत्काल सुखाने का प्रयास किया जाना चाहिए नहीं तो उसमें कवक का विकास होने लगेगा। पांडुलिपियों को अधिक हानि प्रकाश की किरणों से पहुंचती है, विशेषकर सूर्य के प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रकाश से। प्रकाश के प्रभाव से कागज का रंग फीका ही नहीं पड़ता बल्कि यह कमजोर भी हो जाता है। जहां तक संभव हो कागज की

पांडुलिपियों को प्रकाश के सम्मुख कम से कम समय तक रखा जाना चाहिए।

कभी-कभी पांडुलिपियों को रंगीन या छोटे आकार के चित्रों से अलंकृत किया जाता है। ऐसे मामलों में, संरक्षण की उन्हीं विधियों को प्रयोग में लाया जाना चाहिए जो रंग-चित्रों से संबंधित अध्याय में दी गयी हैं।

पांडुलिपियों के संरक्षण के लिए उनका सही तरीके से भंडारण करना बहुत आवश्यक है। पांडुलिपियों को चौकोर आकार के लाल, पीले और रंगीन कपड़ों में लपेटने का पुराना भारतीय तरीका बहुत उपयोगी है। इस तरीके को आज भी प्रयोग में लाया जा सकता है। इस विधि से पांडुलिपियों को हाथ से पकड़ने या रखने से होने वाले नुकसान से ही छुटकारा नहीं मिलता, बल्कि पांडुलिपियों की धूल, कीटों और प्रकाश द्वारा होने वाले नुकसानों से भी रक्षा होती है। पांडुलिपियों के सुरक्षित भंडारण का दूसरा तरीका है कि इन्हें एसिड-विहीन बोर्डों से बने बक्सों में रखा जाए।

चर्मपत्र

पांडुलिपि के लिए चर्मपत्रों का बहुत अधिक प्रचलन मध्यकालीन यूरोप और इस्लामी देशों में है। यह सामग्री तालपत्रों और कागज की तुलना में कहीं अधिक टिकाऊ है। चर्मपत्रों को जानवरों, विशेषकर भेड़ की खाल से तैयार किया जाता है। इसे तैयार करने के लिए खाल को चूने से साफ किया जाता है और बालों तथा मांस को खाल से अलग कर दिया जाता है। इसके बाद खाल को निर्धारित फ्रेम में लटकाकर उसे दोनों ओर से चाकू से खुरचा जाता है। खाल धीरे-धीरे सूखती है और सूखने पर वह सख्त हो जाती है। इसके बाद इसे गर्म पानी में डालकर गीला किया जाता है तथा चिकने पत्थर से रगड़ा जाता है। सूखने के बाद यह फैल जाती है और काफी मुलायम हो जाती है।

चर्मपत्र यदि बहुत अधिक समय तक काफी नमीवाले वातावरण में रखे रहते हैं तो वे पूरी तरह विनष्ट हो सकते हैं। चर्मपत्र की पांडुलिपियों के पन्ने नमीदार वातावरण में रखे रहने से आपस में चिपक सकते हैं। इसके विपरीत, शुष्क वातावरण में चर्मपत्र कड़े होकर चटकने लगते हैं। ऐसी परिस्थिति में, चर्मपत्र के पन्नों में प्रयुक्त स्याही बाहर की ओर निकलने लगती है। अवशोषण और आर्द्रता की समाप्ति की बारंबार क्रिया चर्मपत्र के स्वरूप को बिगाड़ देती है।

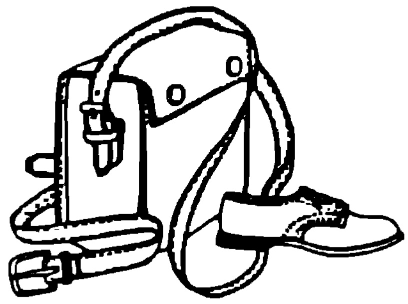
चर्मपत्रों के खराब हुए स्वरूप के उपचार के लिए उन्हें विशिष्ट संरक्षण प्रयोगशाला में भेजा जाना चाहिए।

चर्मपत्रों में कवक बड़ी तेजी से पनपता है। इसकी रोकथाम का सबसे प्रभावी

उपचार थाइमोल के वाष्पों का धूमन है। लंबे समय तक इनकी सुरक्षा के लिए चर्मपत्र के पन्नों के बीच में थाईमोल लगी कागज की शीटों को रखना चाहिए। इथिल एल्कोहल में 1 प्रतिशत आर्थोफिनाइल फिनोल का घोल फफूंदी के प्रकोप को रोकने में सहायक होता है। चर्मपत्र, एक जैविक पदार्थ होने के कारण, कीटों के आक्रमण से प्रभावित होते हैं। इनकी समय-समय पर सफाई और धूमन करना आवश्यक है।

जिल्दसाजी

प्रायः फारसी एवं अरबी जिल्दबंद पांडुलिपियों का रासायनिक और यहां तक कि भौतिक ह्रास होता रहता है। भौतिक विकृति का मुख्य कारण इनका घटिया रखरखाव है। जिल्दबंद या बिना जिल्दबंद पांडुलिपियों को भंडारगृह में रखने से पहले यदि पारंपरिक तरीके से साफ कपड़े में लपेटकर रखा जाए तो काफी हद तक धूल, प्रकाश और अन्य भौतिक वस्तुओं के प्रभाव से उत्पन्न हानि से इनकी रक्षा अपने आप हो जाती है। चर्म को प्रशाधित करने वाले घोल को पांडुलिपि की जिल्द में लेपित किया जा सकता है, जिससे जिल्द अत्यधिक सूखकर भुरभुरी होकर नष्ट न होने पाए (देखिए 'जंतु-चर्म और उसके उत्पाद' शीर्षक अध्याय)



14

जंतु-चर्म और उसके उत्पाद

चर्म के उत्पाद से निर्मित वस्तुएं जैसे चमड़ा और चर्मपत्र समय बीतने के साथ-साथ गंदे, कमजोर और भंगुर होने लगते हैं। चमड़ा और जंतु-चर्म जैविक पदार्थ होने के कारण अनेक विघटनशील कारकों के कारण बहुत अधिक संवेदनशील होते हैं।

मरे हुए जंतु के अपरिष्कृत चर्म में बड़ी शीघ्रता से फफूंद लग जाती है और यदि इसका उपचार समय पर न किया जाए तो जीवाणुओं द्वारा शीघ्र ही विनष्ट कर दिया जाता है। चर्म का अनेक प्रकार से उपचार किया जाता है। इसके लिए यह ध्यान रखना पड़ता है कि परिष्कृत उत्पाद को किस उद्देश्य से तैयार किया जा रहा है। कच्चे चमड़े को तैयार करने के लिए मरे हुए जानवर के शरीर के सारे मांस को निकालकर अलग कर लिया जाता है और उसके बाद चमड़े को सूखने के लिए छोड़ दिया जाता है। चमड़े को तैयार करने के लिए सबसे पहले यांत्रिक रीति से चर्बी, रुधिर वाहिकाओं, पेशिकाओं के अवशेषों के भीतरी भाग को स्वच्छ किया जाता है। फर के अलावा बालों को अलग कर दिया जाता है। सुखाने पर चर्म भंगुर और कठोर बन जाता है। इसे उपयोग योग्य बनाने के लिए इसका मुलायम और लचीला होना आवश्यक है जिसके लिए इसे स्नेहक अथवा चिकने पदार्थ जैसे अरंडी का तेल, यांत्रिक विधियों एवं अन्य प्रक्रियाओं जैसे फिटकरी से उपचारित किया जाना चाहिए।

आधे साफ किए हुए चमड़े को तैयार करने के लिए सबसे पहले उस पर से मांस को पूरी तरह अलग कर देने के बाद उसे सूखने के लिए फैला दिया जाता है और तेल या वसा को उस पर रगड़ा जाता है। कभी-कभी इसे धूमित भी किया जाता है। आधा साफ किया हुआ चमड़ा बहुत लचीला होता है और इसका प्रयोग, वस्त्रों, थैलियों तथा हैडगियर इत्यादि को बनाने के लिए किया जाता है।

चमड़े को परिष्कृत करने के लिए टेनिंग एक प्रमुख प्रविधि है। इसके लिए चमड़े में वानस्पतिक रसायनों जैसे किसी विशेष वृक्ष की छाल तथा खनिज रसायनों यथा क्रोमियम के लवण का प्रयोग किया जाता है। इनके प्रयोग से चमड़े में जल का प्रभाव तो समाप्त हो ही जाता है, साथ में चमड़े का लचीलापन भी सुरक्षित रहता है।

नमी, कवक तथा कीट, हर प्रकार के चमड़े, चर्म तथा लोम-चर्म (प्लेट 29) को हानि पहुंचाते हैं। अतः कीटों के आक्रमण से चर्म-उत्पादों की रक्षा अवश्य की जानी चाहिए। इसके लिए समय-समय पर कीटनाशी दवाओं का इन पर धूमन किया जाना चाहिए।

चमड़े का एक सामान्य दोष उसकी भंगुरता है। चर्म-ड्रेसिंग की प्रक्रिया अपनाकर काफी हद तक उसके लचीलेपन को बरकरार रखा जा सकता है। चमड़े को प्रशाधित करने के लिए ब्रिटिश संग्रहालय की अनुसंधान प्रयोगशाला ने निम्नलिखित सूत्र दिए हैं–

लेनोलिन (बिना जल के)	200 ग्राम	मधुमोम	15 ग्राम
देवदारू तेल	30 घन सेंटीमीटर	हैक्सेन	330 घन सेंटीमीटर

उपरोक्त घोल को एक मुलायम कपड़े से चमड़े पर थोड़ी मात्रा में लगाना चाहिए। दो दिन के बाद चमड़े की सतह को ब्रश से साफ कर लेने के बाद पालिश करना चाहिए। यह नुस्खा बहुत ही अधिक ज्वलनशील है। जिस कमरे में इसका प्रयोग किया जाता हो, वहां पर वायु का संचालन बहुत अच्छा होना चाहिए और धूम्रपान और आग आदि जलाने पर कड़ी पाबंदी होनी चाहिए।

अलंकृत चर्मों में, मुख्यतया चमड़े से बनी हुई प्रतिबिंब-गुड़ियां उल्लेखनीय हैं। ये दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशिया के अनेक देशों जैसे मलेशिया, इंडोनेशिया, थाइलैंड, कंपूचिया और भारत के अनेक भागों में बहुत अधिक लोकप्रिय हैं। इन गुड़ियों का संरक्षण विशेष रूप से कठिन है। प्रायः इन्हें दोनों ओर से पेंट किया जाता है और इनमें लगा हुआ पेंट निकलने लगता है। इन चमड़े की गुड़ियों की सुरक्षा का सबसे उत्तम उपाय इन्हें कम ऊंची दराजों में अलग-अलग रखना है।

जंतु-उत्पादों जैसे पक्षियों, खाल तथा चमड़े की वस्तुओं को भंडार में रखते समय सभी प्रकार की सावधानियां रखनी चाहिए। कुछ वस्तुएं जैसे चौखटे में जड़ी जानवरों और पक्षियों की चमड़ी प्रकाश के प्रति बहुत अधिक संवेदनशील होती हैं, जिसके कारण उनका रंग फीका पड़ जाता है। इस प्रकार की वस्तुओं को अंधेरे में रखा जाना चाहिए। वस्तुओं की धूल से रक्षा के लिए उन्हें सूती वस्त्र या पालिथीन की शीटों से लपेटकर रखना चाहिए।

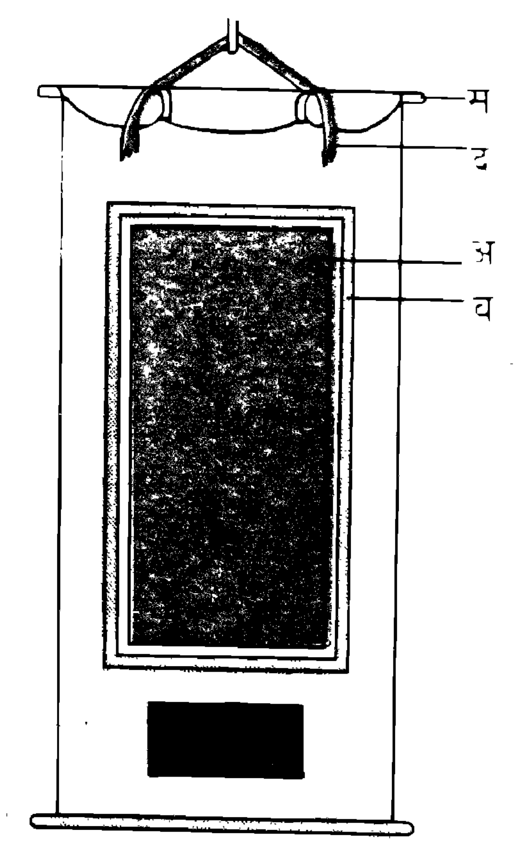


15

आरेखण और रंग-चित्र

दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशिया अपनी पारंपरिक चित्रांकन शैलियों के लिए विख्यात हैं। इनमें लघु-चित्र, पांडुलिपियों का चित्रांकन तथा आलंकारिक चित्र शामिल हैं जो फारसी और भारतीय शैली से संबंधित हैं। इनका विकास कई शताब्दियों में हुआ।

थोड़े से विशाल आकार के रंग-चित्र प्रायः कागज और कभी-कभी वस्त्र में प्राप्त होते हैं। इसके उदाहरण वस्त्रों से बने विशाल धार्मिक रंग-चित्र हैं जिन्हें 'पिछवई' कहा जाता है तथा जो राजस्थान के नाथद्वारा मंदिर में मिलते हैं। थाइलैंड में धार्मिक-ध्वज बनाए जाते हैं। इंडोनेशिया में सूती वस्त्रों से साहित्य और इतिहास के उपाख्यानों पर आधारित विशाल रंग-चित्र बनाने की प्रथा है। तिब्बत, नेपाल, सिक्किम और कुछ हिमालयी प्रदेशों के 'तंगखा' के कुंडलित चित्रित-पट्ट विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं, जिन्हें वस्त्र पर बनाया जाता है तथा इनके वस्त्र का बार्डर एक खास पारंपरिक योजना के अनुसार बनाया जाता है जिसके ऊपरी और निचले छोर में डंडे लगाए जाते हैं (प्लेट 30 और चित्र 20)। जब इनका प्रयोग मठों में लटकाने के लिए नहीं किया जाता तब इन्हें डंडों में लपेटकर रख दिया जाता है, जैसे कि सुदूर-पूर्व के कुंडलित चित्रों को सुरक्षित रखा



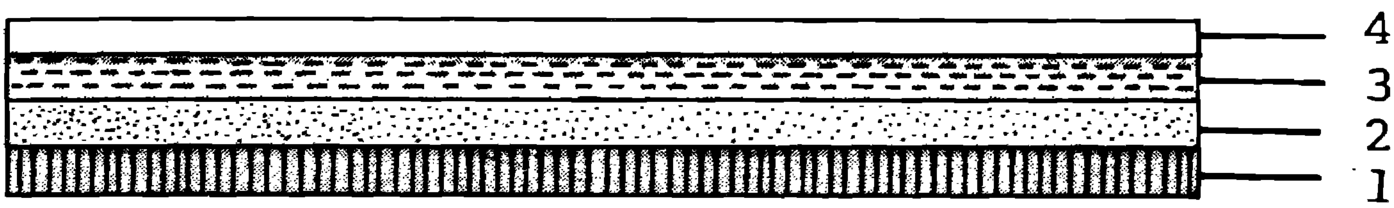
चित्र 20. तंगखा की आरेखीय योजना अ. चित्र; ब. किनारे; स. दंड; द. परदा।

जाता है। कभी-कभी स्मारकों के भित्ति-चित्रों को संग्रहालयों में सुरक्षित रीति से रखने के लिए मूल स्थान से हटा लिया जाता है, पर ऐसा कम ही हो पाता है। राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली में मध्य-एशिया के अनेक स्थलों, हिमाचल प्रदेश के चंबा और कुल्लू क्षेत्र के कुछ अभूतपूर्व भित्ति-चित्रों को मूल स्थान से हटाकर यहां पर स्थानांतरित कर दिया गया है।

कुछ देशों में, पश्चिमी देशों की विरासतों को आयात कर संग्रहालयों में प्रदर्शन के लिए रखा गया है। इनमें सत्रहवीं, अठारहवीं सदी के महान चित्रकारों की पेंटिंग तथा उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी की अनेक कृतियां शामिल हैं।

कोई भी चित्र हो, उसकी अपनी बहुस्तरीय जटिल संरचना होती है। इसकी दो प्रमुख आधारित परतें होती हैं—एक उसकी आधार सामग्री, जिस पर रंग-चित्र को निर्मित किया जाता है, और दूसरी है उसकी रंग योजना जिसे विभिन्न बंधनकारी माध्यमों जैसे गोंद, तैल, मोम या मांड इत्यादि को मिलाकर बनाया जाता है। रंग-चित्रों की सामान्यतया और भी परतें होती हैं। काष्ठ, वस्त्र, कागज आदि से निर्मित सामग्रियों का अपना विशिष्ट गठन और विशिष्ट प्रकार का धरातल होता है। तथापि रंग-चित्रों को उत्कृष्ट बनाने के लिए उनके स्वभावानुसार इनके धरातल को चिकना बनाने की आवश्यकता होती है। अतः चित्र बनाने वाली वस्तु के धरातल में उनकी पतली परतों को सहारा देने के लिए उनमें लेप लगाया जाता है जिससे उनका धरातल चिकना और समतल रहे।

इस तरह, यह देखा जा सकता है कि रंग-चित्रों की एक जटिल संरचना होती है, जिसकी अनेक परतें होती हैं, जैसे आधार परत, धरातल, पेंट और कभी-कभी वार्निश की परत (चित्र 21)। अतः इन चित्रों का ह्रास, किसी एक या एक से अधिक परतों के विघटन के फलस्वरूप हो सकता है।



चित्र 21. रंग-चित्रों की संरचना जटिल और अनेक परतों से युक्त होती है—1. आधार परत, 2. धरातल; 3. पेंट और 4. कभी-कभी वार्निश परत।

रंग-चित्रों की स्थिति को जलवायु के परिवर्तन बहुत अधिक प्रभावित करते हैं। प्रायः काष्ठ के रंग-चित्रित फलकों का क्षैतिजाकार विरूपित होकर संवलित तथा अवतल या उत्तल आकार ले लेता है। फलकों के आकार के इस प्रकार से बिगड़ने का प्रमुख कारण नमीदार वातावरण में काष्ठ के चित्रित और अचित्रित

स्थलों की अलग-अलग मूलभूत प्रकृति है।

काष्ठ के फलकों का फैलना और सिकुड़ना वातावरण के घटने-बढ़ने पर निर्भर करता है। इसी के कारण पेंट की पपड़ी निकलने लगती है क्योंकि पेंट अपने को जलवायु परिवर्तन के अनुकूल नहीं ढाल सकता (प्लेट 31)।

नमी वाले वातावरण में, रंग-चित्रों को हमेशा सूक्ष्म-जीवों की वृद्धि का खतरा बना रहता है। रंग-चित्रों को सिल्वर फिश, तिलचट्टे, भृंग और दीमक जैसे कीट हानि पहुंचाते हैं। यदि आवश्यकता पड़े तो इनके लिए वाष्प-कीटनाशी औषधियों के धूमन का प्रयोग किया जा सकता है। तथापि, तैल-चित्रों को थाइमोल या पैराडाइक्लोरोबेंजीन से कभी भी धूमित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि इनका प्रभाव तैल पर पड़ता है।

रंग-चित्रों पर, प्रकाश का भी अत्यंत विनाशकारी प्रभाव पड़ता है। कागज के तंतु, प्रकाश के प्रभाव से कमजोर तो होते ही हैं, साथ ही वे बदरंग भी होने लगते हैं। सावधानी के रूप में जहां तक संभव हो इन पर सूर्य का प्रकाश नहीं पड़ने देना चाहिए। रोशनी के लिए फिल्टरों से युक्त फ्लारोसेंट ट्यूबों का प्रयोग किया जा सकता है।

वायुमंडलीय प्रदूषण, जैसे सल्फर डाइआक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड और धूल के कण रंग-चित्रों, विशेषकर कागज पर बने हुए चित्रों को अत्यंत हानि पहुंचाते हैं।

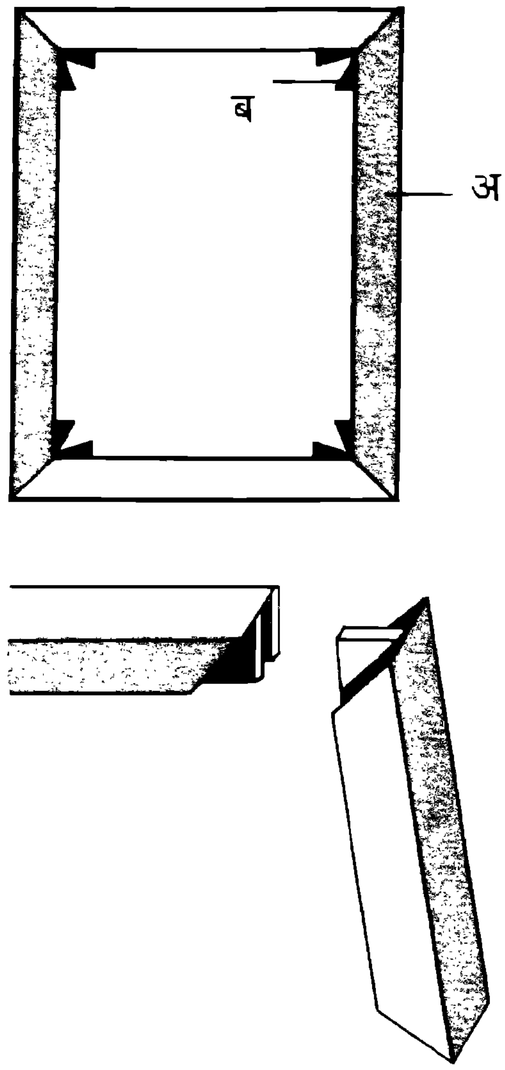
वातानुकूलन और वायु-फिल्टरन की सुविधा न होने पर रंग-चित्रों को वायुमंडल में फैले हुए प्रदूषण से बचाने के लिए सबसे सुविधाजनक विधि है कि चित्रों को काचित फ्रेमों में मढ़कर रखा जाए। इन चित्रों को बार-बार नहीं पकड़ना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से चित्रों व उनके फ्रेमों को क्षति पहुंच सकती है। मूल आकृति को बार-बार छूने से बचाने के लिए इनके छाया-चित्रों या पारदर्शी-चित्रों को निरीक्षण, चयन और अध्ययन के काम के लिए इस्तेमाल किया जाना चाहिए। अत्यंत विशाल और वजनदार रंग-चित्रों को इधर-उधर ले जाने के लिए पहिए वाली गद्दीदार ट्राली का प्रयोग किया जाना चाहिए।

वस्त्र-चित्र

कैनवस पर बने हुए तैल-चित्रों को बिना फ्रेम के तथा बिना पूरी तरह फैलाए नहीं रखना चाहिए। जिन चौखटों में इन्हें तानकर रखा जाए, उनके कोनों में काष्ठ-कठने लगे होते हैं जिससे कैनवस के चौखटों में चित्र तना रहे (चित्र 22 और 23)। चित्रों को फ्रेम में लगाना चाहिए और फ्रेम को मजबूती प्रदान करने

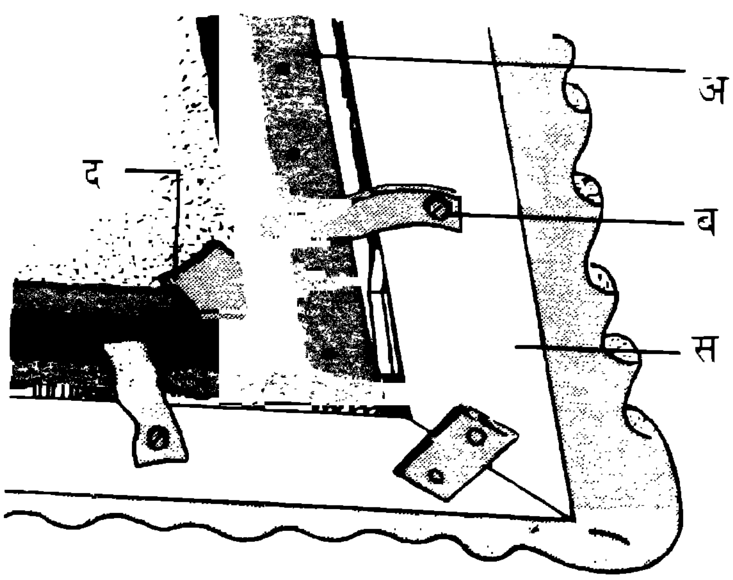
के लिए उसमें छोटे-छोटे पेंच जड़ देने चाहिए। कीलों का प्रयोग इसमें बिलकुल नहीं किया जाना चाहिए (चित्र 24)।

उन वस्त्र-चित्रों को, जिनमें गाढ़े पेंट का प्रयोग किया गया हो, कभी लपेटकर नहीं रखना चाहिए। यदि उन्हें लपेटकर रखना आवश्यक है तो ऐसी स्थिति में पेंट किए हुए भाग को बाहर की ओर रखना चाहिए। वलयित-चित्र जिनमें काफी पतले पेंट का प्रयोग किया गया हो, उनकी अपनी स्वतंत्र परत नहीं होती है। यदि उन्हें सावधानी से रखा जाता है तो उन्हें लपेटकर रखने में कोई हानि नहीं है। इस प्रकार के उदाहरण हमें चीनी और जापानी पड़े या खड़े वलयित चित्रों में मिलते हैं।

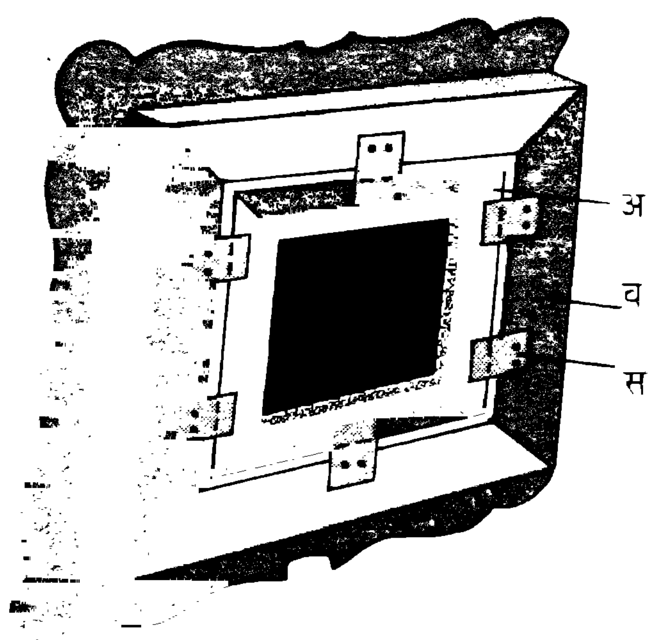


चित्र 22 स्ट्रेचर की आयोजना। काष्ठ-कीलों के पच्चर 'ब' स्ट्रेचर के किनारों में लगे 'अ' कैनवस को तानकर रखते हैं।

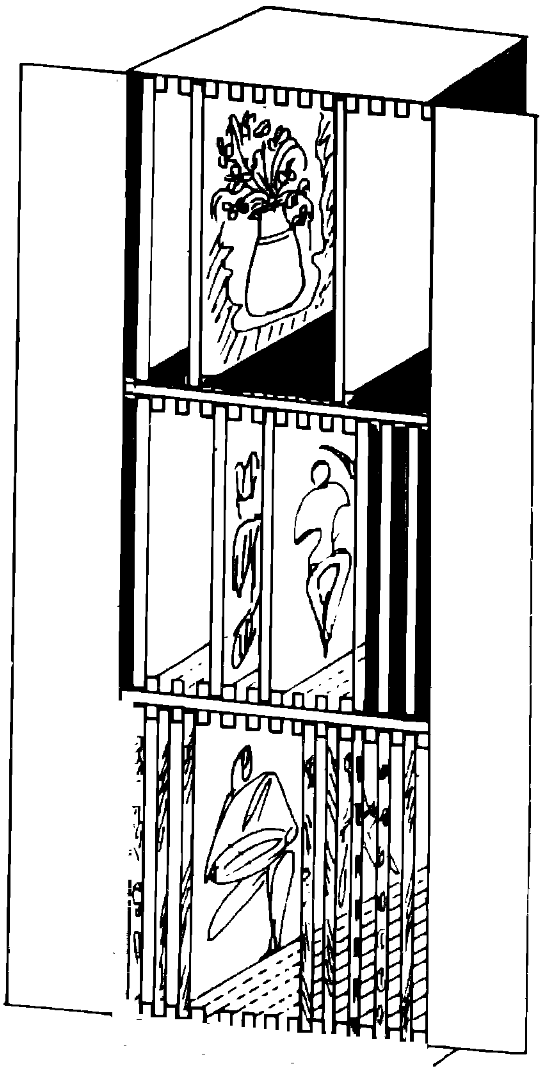
संग्रहालय में आरक्षित संग्रहों या भंडारगृहों में रखे हुए रंग-चित्रों की विशेष देखभाल की जानी चाहिए। भंडारगृहों में चित्रित सतहों का संपर्क एक-दूसरे के साथ



चित्र 23. स्ट्रेचर का कोना। अ. स्ट्रेचर; ब. चौखटा; स. काष्ठ-कील; और द. धातु की क्लिप।

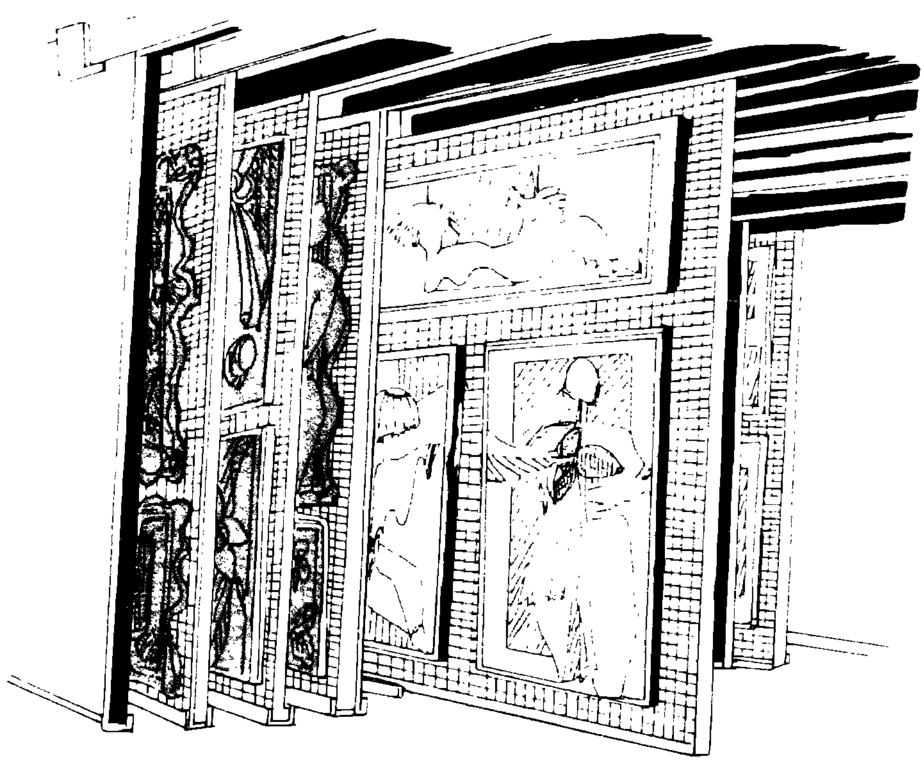


चित्र 24 चित्र को फ्रेम के अंदर छोटे आकार की प्लेटों को पेंचों द्वारा फ्रेम में दबाकर रखना चाहिए। उनमें कील कदापि नहीं लगाने चाहिए। अ, स्ट्रेचर; व, फ्रेम, और स, धातु क्लिप।

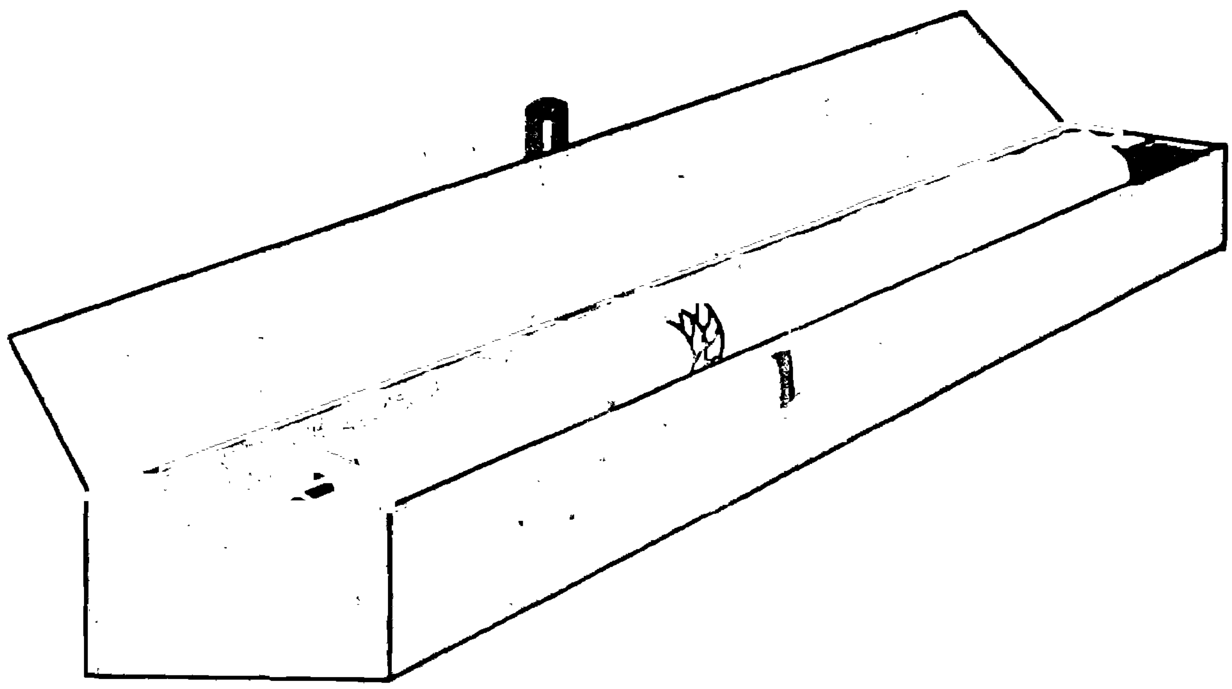


नहीं होने देना चाहिए। चित्रों को खास प्रकार के रैकों या अंतरालकों में खड़ी स्थिति में इस प्रकार से रखना चाहिए कि वे एक दूसरे का स्पर्श न करें (चित्र 25)। इस प्रकार से रखे चित्रों को सुविधा से नहीं देखा जा सकता। कुछ आधुनिक संग्रहालयों ने चित्रों के संग्रहकक्षों में ग्रिल लगे हुए समानांतर खड़े धातु के चौखटे स्थायी रूप से स्थापित कर रखे हैं जिनमें हुकों में अनेक चित्रों को लटकाया जा सकता है। ये फ्रेम एक दूसरे के बहुत ही निकट होते हैं और इनमें केस्टर जड़े होते हैं जो भवन की छत और फ़र्श पर बनी हुई पटरियों पर स्लाइड करते हैं जिन्हें चित्रों को देखने के लिए इधर-उधर सरकाया जा सकता है (चित्र 26)।

चित्र 25. छोटे फ्रेम वाले चित्रों को रखने के लिए संग्रह-धानी। संग्रह-धानियों को इस प्रकार बनाया जाना चाहिए कि चित्र लम्बवत स्थिति में उनमें इस प्रकार रखे जाएं कि वे एक दूसरे का स्पर्श न करें।

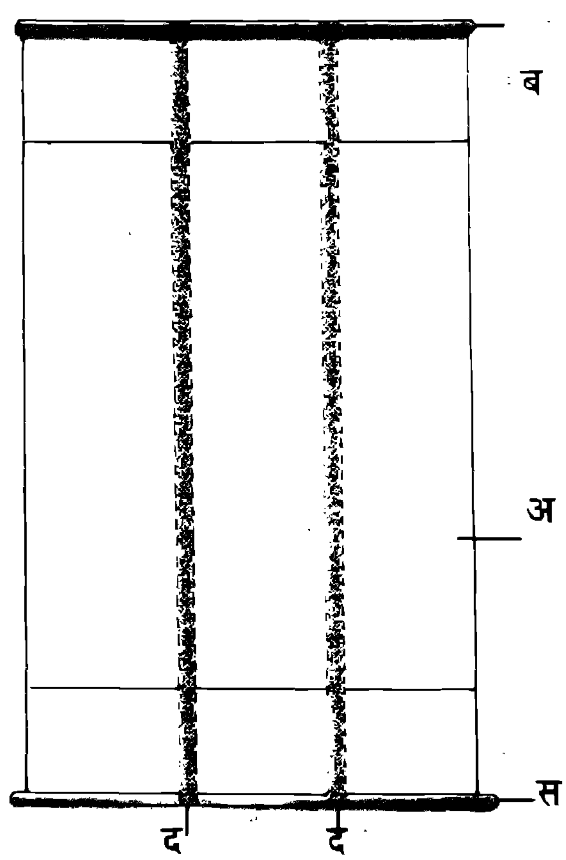


चित्र 26. समान्तर खड़े फ्रेमों से युक्त संग्रह-कक्ष जिसमें तार-युक्त ग्रिलें अथवा छेददार तख्ते जड़े हुए हैं। इनमें हुकों की सहायता से अनेक चित्रों को जड़ा जा सकता है। इनके फ्रेमों में केस्टर बने होते हैं जिनके ऊपर और नीचे आगे-पीछे खिसकाने की पटरियां बनी होती हैं और चित्रों का अवलोकन करते समय इन्हें एक ओर से बाहर खींचा जाता है।



चित्र 27. कुंडलित चित्रों को लपेटकर अलग-अलग बक्सों में रखना चाहिए।

कुंडलित चित्रों जैसे तंगखा को कभी लटकाना नहीं चाहिए, बल्कि इन्हें लपेटकर अलग-अलग डिब्बों में रखना चाहिए (चित्र 27)। इन डिब्बों को तब एक लकड़ी की पेटी के अंदर सुरक्षित रखना चाहिए। उदाहरणार्थ, यदि इन कुंडलित चित्रों को प्रदर्शन के लिए खड़ी स्थिति में लटकाना पड़े तो दो मोटे रिबनों को कुछ मिलीमीटर की लंबाई में इन चित्रों के पीछे चिपका देना चाहिए। इन्हें विशिष्ट



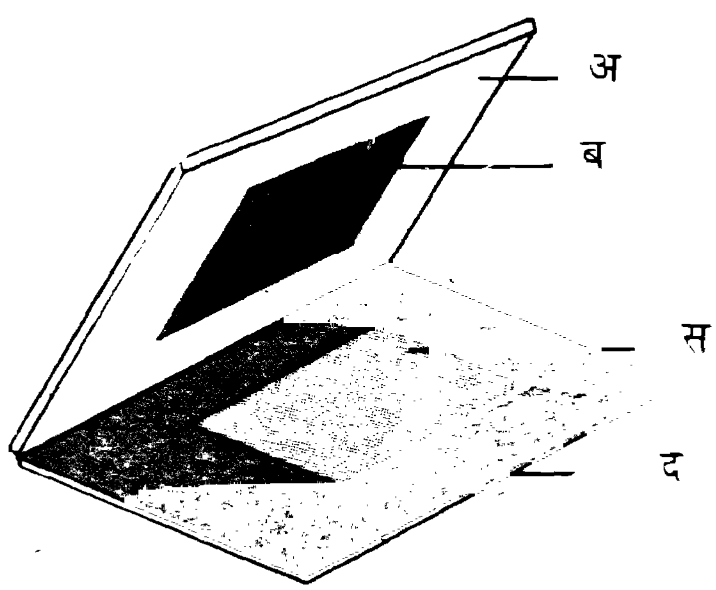
चित्र 28. उन कुंडलित चित्रों को प्रदर्शित करने के लिए जिनके रोलर काफी भारी होते हैं, के पृष्ठ भाग में मजबूत 'द' रिबनों को कुंडलित चित्र के 'अ' वाले पृष्ठ भाग से जोड़ देना चाहिए जिससे ऊपरी रोलर वाला 'ब' भाग नीचे के रोलर के 'स' भाग से परस्पर जुड़ा हुआ रहे।

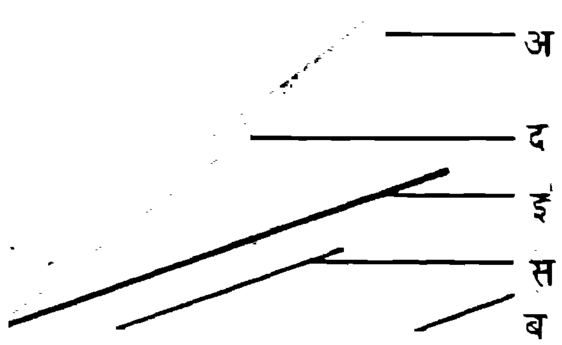
आधार देने के लिए इनका एक सिरा कुंडलित चित्र के उस भाग में लगाया जाता है जहां पर रोलर फंसाया जाता है और दूसरा सिरा नीचे के भाग से जुड़ा रहना चाहिए (चित्र 28)।

वस्त्रों पर बनाए हुए विशाल भारतीय चित्रों को, जो नाथद्वारा चित्र अथवा राजस्थानी फड़ पेंटिंग के नाम से विख्यात हैं, तह करके कदापि नहीं रखना चाहिए। ऐसे चित्रों को विशेष प्रकार के रोलरों में लपेटकर रखना चाहिए और उन्हें उसी तरीके से रखना चाहिए जिस प्रकार वस्त्रों को रखा जाता है।

कागज पर बने रंग-चित्र

कागज या कागज के गत्तों पर बनाए गए चित्रों को जरा सा भी मोड़ देने पर उन्हें हानि पहुंच सकती है। कागज पर बने छोटे आकार के चित्रों की रक्षा का सबसे उत्तम तरीका यह है कि उनके नीचे दफ्ती लगाकर चित्र को उसमें जड़ देना चाहिए

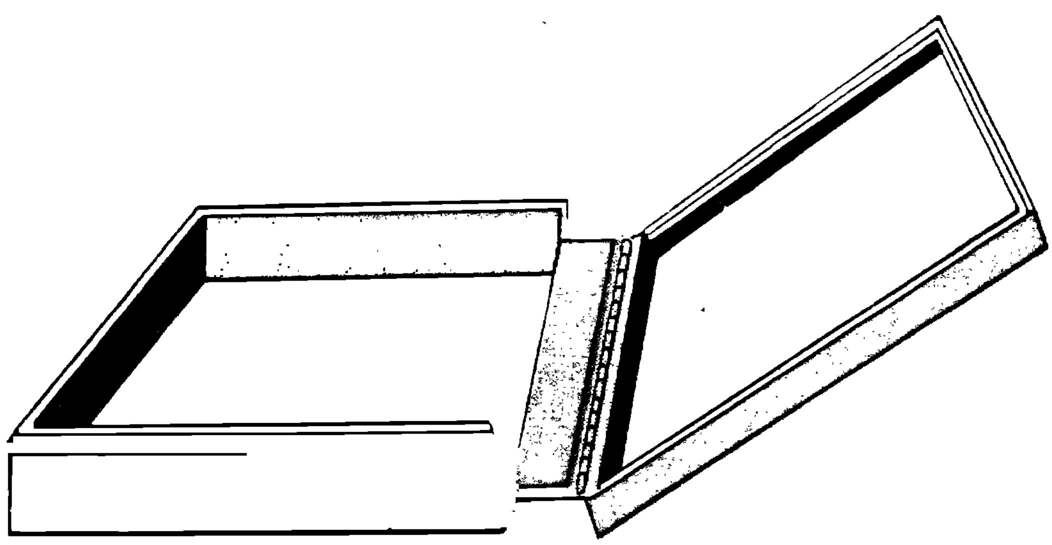




चित्र 29. और 30. छोटे आकार के कागज के चित्रों को सुरक्षित रखने के लिए प्रयुक्त खिड़कीनुमा मढ़ाई। खिड़कीनुमा मढ़ाई 'अ' दूसरी मढ़ाई 'ब' से जुड़ी रहती है जिस पर चित्र 'स' कागज की सहायता से जड़ दिया जाता है। चित्र को अपघर्षण या खरोचों इत्यादि से बचाने के लिए टिशू कागज 'द' को चित्रों के ऊपर लगा देना चाहिए।

और उनके ऊपर खिड़कीनुमा कट-आउट बनाकर अंदर चित्र को मजबूती से स्थापित कर देना चाहिए (चित्र 29)।

रंग-चित्रों की सतह को अपघर्षण और अचानक लगने वाली खरोंचों से बचाने के लिए, उनके बीच उनके स्तर का पतला टिशू कागज रखना चाहिए (चित्र 30)। बिना माऊंट किए गए और फ्रेम किए गये चित्रों के मध्य टिशू कागज होना आवश्यक है, तथा इन चित्रों को हमेशा कोनों से पकड़ कर उठाना चाहिए ताकि चित्रित सतह पर हाथ न लगें। चित्रों को स्थानांतरित करने के लिए विशेष बक्सों का इस्तेमाल करना चाहिए। विशेष रूप से घटिया किस्म के कागज को चित्रों के संपर्क में नहीं आने देना चाहिए।

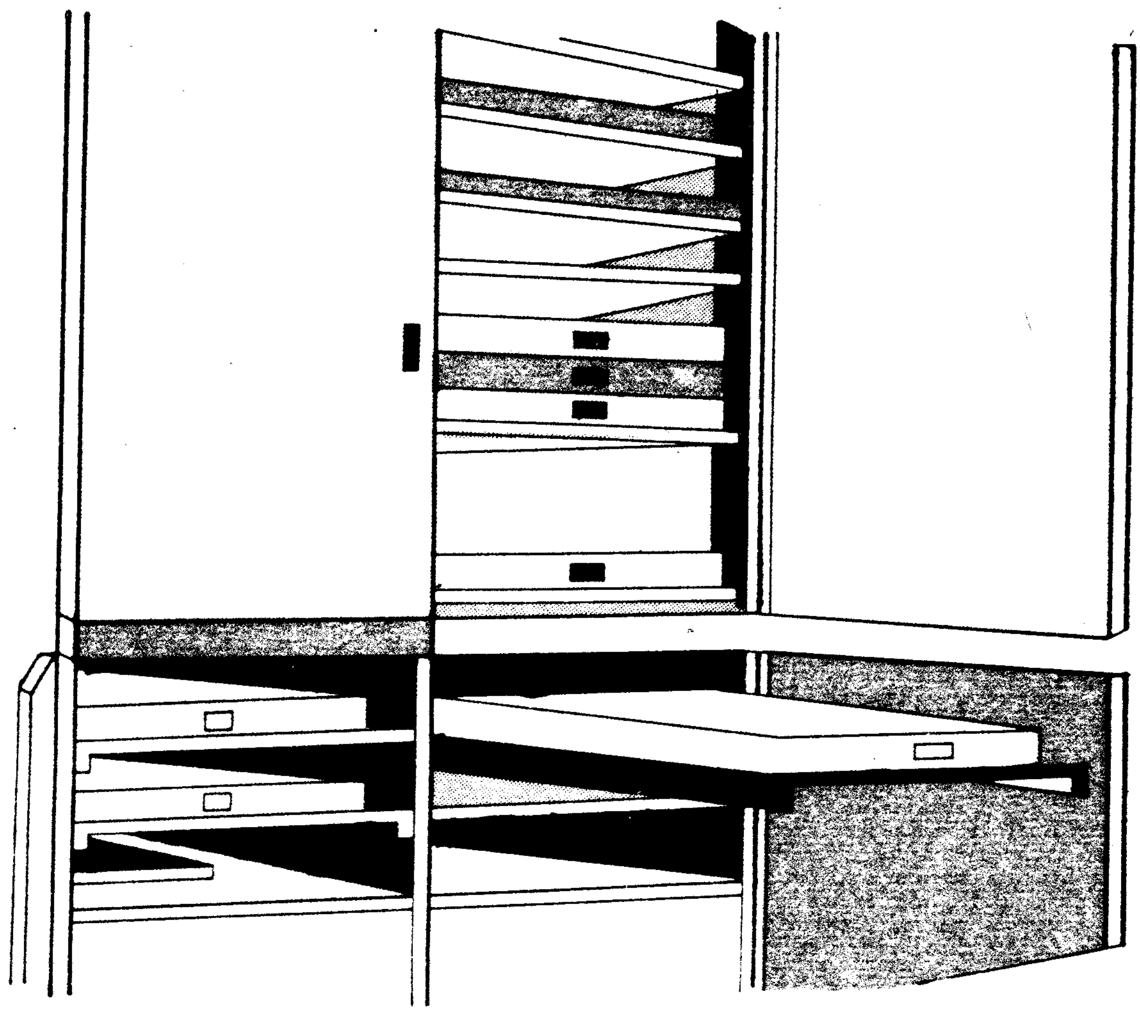


चित्र 31. कागज रंग-चित्रों को रखने के बक्से की योजना।

माऊंट किए हुए कागज के रंग-चित्रों के भंडारण के लिए विशेष बक्सों का सुझाव दिया जाता है। ये बक्से सोलैंडर बाक्स कहलाते हैं, और इन्हें पश्चिमी देशों में प्रिंट और आरेखण रखने के काम में लाया जाता है (चित्र 31)। तब इन बक्सों को एक कैबिनेट में रखा जाता है (चित्र 32)। रंग-चित्रों के दृश्य भंडारण तरीके में रंग-चित्रों को फ्रेम में जड़कर इस प्रकार रखा जाता है कि उनमें से प्रत्येक को बाहर खिसकाकर जांचा-परखा जा सके।

रंग-चित्रों को जहां तक संभव हो फ्रेम करवाकर ही रखना चाहिए। फ्रेम उनकी खूबसूरती बढ़ाने के साथ ही उनकी सुरक्षा भी करते हैं। कागज की पेंटिंग के साथ लकड़ी के फ्रेम का सीधा संपर्क नहीं होना चाहिए। पेंटिंग और फ्रेम के बीच आल-रैग-मैट को रखना चाहिए। रंग-चित्रों को शीशे के साथ भी चिपकाकर नहीं रखा जाना चाहिए क्योंकि आर्द्र वातावरण में चित्रों का रंग उतर कर शीशे पर चिपक सकता है।

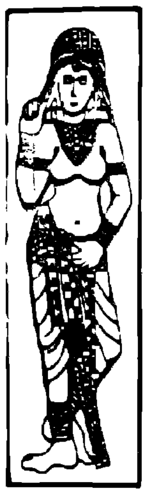
आरेखण और रंग-चित्र



चित्र 32. रंग-चित्रों को भंडारित करने वाली कैबिनेट की योजना। प्रत्येक बक्से पर पहचान लेबल लगाये जाते हैं।

पेंटिंग के पृष्ठ भाग की सुरक्षा के लिए वहां हार्ड-बोर्ड लगाये जाने चाहिए। हार्ड-बोर्ड और फ्रेम के बीच के खाली स्थान को कागज की पट्टियां चिपकाकर भरा जाना चाहिए, किंतु यह खाली स्थान बिलकुल सील बंद नहीं किया जाना चाहिए। ऐसा करने से हवा और आर्द्रता का आवागमन बना रहता है, वरना नमी अंदर ही कैद होकर रंग-चित्रों पर जमने लगेगी।

कभी-कभी रंग-चित्रों को पैक करना पड़ता है। इसके लिए डस्ट-प्रूफ पैकिंग-बक्सों का इस्तेमाल करना चाहिए। रंग-चित्रों को पालिथीन शीट जैसे वातावरण-रोधी सुरक्षा वस्तुओं से लपेटकर बक्सों में रखा जाना चाहिए।



16

फोटोग्राफ

इधर अनेक वर्षों से फोटोग्राफिक सामग्रियों के संरक्षण तथा देखभाल के संबंध में अपेक्षित जानकारी की आवश्यकता बहुत अधिक बढ़ी है। फोटोग्राफों के निगेटिवों, प्रिंटों, स्लाइडों इत्यादि के अलावा पिछली शताब्दी के ऐतिहासिक फोटोग्राफों के विशाल संग्रह बहुत बड़ी मात्रा में उपलब्ध हैं।

फोटोग्राफ–पाजिटिव, निगेटिव या स्लाइड–एक जटिल सामग्री है। इसमें अनेक प्रकार के घटक होते हैं जिनके विनाश की प्रक्रिया के विभिन्न कारण होते हैं। प्रायः ये संघटक इसके आधार, इन्हें आपस में बांधने के माध्यम और प्रतिबिंब बनाने वाले रसायन होते हैं। इसके अलावा कभी-कभी विशेष प्रभाव प्राप्त करने के लिए अथवा फोटोग्राफों को अधिक टिकाऊ बनाने के लिए दूसरे पदार्थों को इनमें मिला दिया जाता है।

संग्रहालयाध्यक्ष या संग्रहकर्ता को फोटोग्राफी की विभिन्न प्रक्रियाओं का ज्ञान होना चाहिए, ताकि उसे यह ज्ञात हो कि विभिन्न परिस्थितियों में कोई फोटोग्राफ किस तरह प्रतिक्रिया व्यक्त करेगा। प्रमुख प्रतिबिंब निर्माण घटकों के आधार पर, प्रक्रियाओं को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है, जो मुख्यतया चांदी, लौह अथवा क्रोमियम रसायनों पर आधारित हैं।

इन तीनों में चांदी या रजत पर आधारित फोटोग्राफ सबसे अधिक लोकप्रिय और महत्वपूर्ण हैं। सबसे पुराने फोटोग्राफ डेगूरियो किस्म के हैं जिनमें हलके संवेदनशील पदार्थ के रूप में रजत रसायनों का प्रयोग किया जाता था। डेगूरियो प्रकार की फोटोग्राफिक प्रक्रिया अथवा प्रविधि का आविष्कार डेगूरियो ने किया था और इसे उसने 1839 ई. में पेटेंट किया। उसने रजत-आयोडाइड को हल्के

संवेदनशील यौगिक के रूप में प्रयुक्त किया था जिसमें प्रतिबिंब को पारद वाष्पों द्वारा डेवलप किया जाता था और अंत में सोडियम थायोसल्फेट द्वारा स्थायी किया जाता था।

ठीक इसी समय, टेल्बोट ने फोटोग्राफों के निगेटिव और पाजिटिव तैयार किए जिनमें सिल्वर-हैलाइड को कागज के धरातल में लगाया जाता था। इस प्रक्रिया को 'केलोटाइप' नाम दिया गया। पर इस प्रक्रिया में एक कमी थी कि कागज के तंतुओं के कारण इनके पाजिटिव स्पष्ट नहीं होते थे। इस कमी को दूर करने के लिए सेंट विक्टर ने 1847 ई. में कांच निगेटिव की शुरुआत की। उसने ऐल्बूमिन को कांच के निगेटिव में, रजत प्रतिबिंब के योजक के रूप में प्रयुक्त किया। कुछ वर्षों बाद कोलोडियन को भी कांच की प्लेटों पर निगेटिव बनाने के लिए प्रयुक्त किया गया। यह प्रक्रिया 'आर्द्र कोलोडियन प्रक्रिया' के नाम से विख्यात है। कुछ समय बाद रजत लवणों के योजक के रूप में जिलेटीन का प्रयोग किया जाने लगा। आर्द्र कोलोडियन प्रक्रिया को विशेष प्रभाव देने के लिए, इसे संशोधित किया गया। जब इसे काली लैकर लौह पट्टिका पर लगाया जाता था तो यह पाजिटिव फोटोग्राफ तैयार कर देती थी जिसे 'फेरो टाइप' या 'टिन टाइप' कहा जाता था। इस प्रकार के फोटोग्राफ हमें आज भी अनेक संग्रहों में मिलते हैं।

धीरे-धीरे कांच के ठोस आधारक के स्थान पर अधिक लचीली सैलुलाइड शीटों और सैलुलोस नाइट्रेट या सैलुलोस एसीटेट फिल्मों का प्रयोग किया जाने लगा। आजकल पालियस्टर फिल्म के निगेटिव में प्लास्टिक का प्रयोग किया जाता है।

फोटोग्राफों में पाई जाने वाली समान्य क्षतियों में उनका पीला पड़ना, दाग लगना, इमल्शन का अलग होना, धरातल पर गड्ढे पड़ना, कवक के हरे दाग लगना, कीटों द्वारा निर्मित छिद्र, मुड़ने के निशान पड़ना, चटक जाना इत्यादि शामिल हैं।

यह प्रायः देखने में आया है कि फोटोग्राफों को अधिकतर हानि उनके अनुचित रखरखाव से होती है। ऐसा प्रायः कांच की प्लेटों के संबंध में होता हैं। पुराने फोटोग्राफों में जिलेटीन भुरभुरी हो जाती है और थोड़ा सा भी छूने पर उसमें दरार पड़ सकती है और यहां तक कि टूटकर गिर भी सकती है।

प्रिंटों या निगेटिवों को पकड़ने का अपना तरीका होता है। जहां तक संभव हो फोटोग्राफों को उनके कोनों से पकड़ना चाहिए जिससे फोटोग्राफों की मुख्य सतह पर हाथ न लगे। इनमें हाथ लगने से उंगलियों के निशान फोटोग्राफ की जिलेटीन परत पर लग जाते हैं। अतः फोटोग्राफों को देखते समय यह उचित

होगा कि कपड़े के दस्ताने पहन लिए जाएं। इस काम के लिए रबड़ या विनाइल के दस्ताने बाजार में मिलते हैं।

हानिप्रद कारक

फोटोग्राफों को यदि एक ही पैकेट में एक साथ रखा गया हो तो नमी वाले वातावरण में वे आपस में चिपक सकते हैं और उन्हें बिना हानि पहुंचे अलग नहीं किया जा सकता। दूसरी ओर, कम आर्द्रता या नमीवाले वातावरण में फोटोग्राफ, निगेटिव और प्रिंट भुरभुरे हो जाते हैं। अतएव, इसके लिए वातानुकूलन आवश्यक है।

प्रकाश, कवक और कीट फोटोग्राफों को हानि पहुंचाते हैं। अतः इनसे इनकी समुचित रक्षा की जानी चाहिए (प्लेट 32)।

पुराने फोटोग्राफों को रखने के लिए विशेष सावधानी की आवश्यकता है। ऐसे फोटोग्राफों को मुलायम ब्रश से साफ करना चाहिए तथा इन्हें पानी या पानी पर आधारित घोल से धोना या साफ नहीं करना चाहिए। यदि फोटोग्राफ पानी से भीग जाते हैं तो उन्हें खुले में सुखा देना चाहिए। उन्हें ब्लाटिंग पेपर के बीच में सूखने के लिए नहीं रखना चाहिए। फोटोग्राफ में फ्रेम लगाते समय इसका ध्यान रखना चाहिए कि कांच, फोटोग्राफ को स्पर्श न करे। कांच और फोटोग्राफ के बीच में एक अन्तरालक रखा जाना चाहिए। जब कभी किसी पुराने फोटोग्राफ के रखरखाव के बारे में समस्या उत्पन्न हो तो किसी योग्य संरक्षणकर्ता से परामर्श लेना चाहिए। उसमें उत्पन्न दोषों को स्वयं ही हटाने का प्रयास नहीं करना चाहिए।



17

विविध सामग्रियां

संग्रहालय में रखी हुई कला-वस्तुओं के परिरक्षण की प्रक्रिया में विविध सामग्रियों की अवहेलना नहीं की जानी चाहिए। इनमें हाथीदांत जैसी बहुत कम मात्रा में पाई जाने वाली सामग्रियां भी हैं और लाख तथा पैपियर-माशे जैसी वस्तुएं, अथवा बहुतायत में पाई जाने वाली टोकरियां और चटाइयां इत्यादि भी हैं। इन सामग्रियों की देखभाल तथा इनको संरक्षित करने की विभिन्न तकनीकों की भी अनदेखी नहीं करनी चाहिए।

भंडारण और संरक्षण के सामान्य नियमों के अलावा जिनका उल्लेख पिछले अध्यायों में किया जा चुका है, अब हम इनके संरक्षण के संबंध में जो खास-खास बातें हैं उन पर चर्चा करेंगे।

टोकरीसाजी, चटाइयां तथा इससे मिलती-जुलती सामग्रियां

दक्षिण और दक्षिण-पूर्वी एशिया के अनेक भागों में इन सामग्रियों का बहुत विकसित तकनीकी कौशल के कारण महत्वपूर्ण स्थान है। संग्रहालय में प्राप्त वस्तुओं का धूमन, समय-समय पर उनके निरीक्षण तथा कीटों और सूक्ष्मजीवों से उनकी रक्षा उसी रीति से की जानी चाहिए जिस प्रकार वस्त्रों से बनी सामग्रियों की की जाती है।

हाथीदांत और अस्थि

अनेक विलासिता और जरूरत की वस्तुओं तथा मूर्तियों, आभूषणों, मनकों, कड़ों तथा आयुधों की मूंठों को बनाने के लिए हाथीदांत और अस्थि का प्रयोग किया जाता रहा है। काष्ठ को अलंकृत करने के लिए उसे उत्खचित कर उसमें हाथीदांत

को जड़ा जाता है। हाथी से प्राप्त हाथीदांत का बहुत प्रयोग होता रहा है, पर उत्तर भारत में मुगल काल में तलवारों और कटारों की मूंठ को बनाने के लिए वालरस-रदों को उत्तरी यूरोप से आयातित किया जाता था जो कि हाथीदांत का विकल्प था। तिब्बत में, विशेष धार्मिक अनुष्ठानों में धर्माधिकरियों द्वारा अस्थि के अत्यंत सुंदरता से उत्कीर्ण आभूषणों का प्रयोग किया जाता था।

अन्य जैविक पदार्थों की तरह हाथीदांत और अस्थि में काष्ठ की तरह दरारें पड़ जाती हैं क्योंकि वे अधिक नमीदार वातावरण में फैलते हैं और कम नमीदार वातावरण में सिकुड़ जाते हैं (प्लेट 33)। हाथीदांत तथा अस्थि की सामग्रियों में वातावरण के प्रभाव को कम करने के लिए उनमें जल प्रत्याकर्षी पदार्थों जैसे सूक्ष्म क्रिस्टलीय मोम का लेप किया जा सकता है। मोम को गलाकर हाथीदांत या अस्थि को उसमें कुछ मिनटों तक रखा जाता है।

अस्थि और हाथीदांत में छोटे-छोटे छिद्र होते हैं और इनका रंग हल्का होता है। इनमें बड़ी आसानी से दाग लग जाते हैं जिन्हें केवल एक विशेषज्ञ ही निकाल सकता है। हाथीदांत और अस्थि की सामग्रियों को साफ मुलायम टिशू कागज में लपेटकर गद्दीदार शेल्फों अथवा बक्सों के अंदर रखना चाहिए।

लाख की वस्तुएं

एशियाई देशों में, विशेषकर दक्षिण और दक्षिण-पूर्वी एशिया में किसी वस्तु को परिष्कृत बनाने के लिए लाक्षा-कर्म की तकनीक बहुत लोकप्रिय थी। पूर्वी देशों की लाख की वस्तुएं पश्चिमी देशों के संग्रहालयों में रखी हुई हैं। चीन, कोरिया तथा जापान में निर्मित ये सुंदर कलात्मक वस्तुएं रस वर्निसीफेरा नामक पेड़ के रस को संसाधित और रंगकर बनाई जाती हैं। तथापि एक दूसरे प्रकार का लैकर भी होता है, जिसे लाक्षा या लाख कहा जाता है। यह लाक्षा 'फाइकस रिलीजिओसा' पेड़ की नर्म डालियों तथा टहनियों के रेजिनी पदार्थ को जमा कर, संसाधित कर तथा रंग करके प्राप्त की जाती है तथा उससे वस्तुएं तैयार की जाती हैं। इस वृक्ष की टहनियों में एक तरल पदार्थ बहुत अधिक पाया जाता है, संसाधित करने के बाद जिसका रेजिन बनता है—इससे निर्मित उत्पादों का वाणिज्यिक नाम लाख चपड़ा या शल्क लाख दिया गया है। इन्हें लाक्षा सामग्री या लाख की वस्तुएं कहना अधिक उपयुक्त है। इन दोनों में से लाख की वस्तुओं का ह्रास बड़ी तेजी से होता है, क्योंकि नमी और अपघर्षण इसे बहुत प्रभावित करते हैं। लाख की वस्तुओं में अनेक प्रकार के डिजाइनों का प्रयोग किया जाता है। बर्मा और थाइलैंड में काले के ऊपर स्वर्ण-पत्र डिजाइनों का बहुत प्रयोग किया जाता है। थाइलैंड

में सीप (कवचप्राणी जंतुओं के भीतरी भाग के टुकड़े) को अलंकरण के लिए लाख की वस्तुओं में जड़ा जाता है। ये पात्र अनुष्ठानों तथा अन्य विलासिता के अवसरों के लिए बनते हैं, अथवा अत्यंत कीमती पात्रों की श्रेणी में आते हैं। दक्षिण-पूर्वी एशिया में लाख की वस्तुओं के आधार के रूप में काष्ठ का प्रयोग होता है। इसके अलावा, अन्य सामग्रियां जैसे धातु या पैपियर-माशे की वस्तुओं को भी अलंकरण के लिए प्रायः लाख या चपड़ा से परिवेष्ठित किया जाता है। काष्ठ या पैपियर-माशे की वस्तुओं पर यदि लाख को ठीक प्रकार से परिवेष्ठित किया गया हो तो वह नमी से सुरक्षा प्रदान करती है तथा आर्द्रता की घट-बढ़ में वस्तुओं के स्वरूप में जो विकृति आ सकती है उसकी संभावना को कम कर देती है। अति शुष्क वातावरण लाख की वस्तुओं की चमक का ह्रास ही नहीं करता, वरन् इसके प्रभाव से ये वस्तुएं भुरभुरी हो जाती हैं और इसके चिप्पड़ भी निकल सकते हैं। यदि लाख की वस्तुओं को प्रदर्शन के लिए रखना है अथवा उन्हें भंडारित करना है तो वातावरण में लगभग 55 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता रहनी चाहिए।

लाख की वस्तुओं अथवा लाख के पात्रों को जल या जलीय घोलों से नहीं धोना चाहिए क्योंकि चपड़े की परत पानी लगने से प्रभावित होती है और इसका रंग खड़िया की तरह सफेद या मलिन हो जाता है।

लाख बहुत अधिक नाजुक होती है, अतः इसकी झटकों और खरोंचों से रक्षा की जानी चाहिए। लाख की वस्तुएं एक दूसरे से दूर रखी जानी चाहिए। कठोर और खुरदरी सतह वाली वस्तुओं से भी इनका स्पर्श नहीं होने देना चाहिए। लाख की वे वस्तुएं जिन पर स्वर्ण-पत्र अलंकरण किया गया है, उन्हें प्रयोग में लाने से उनमें किया गया यह अलंकरण घिस सकता है। लाख की वस्तुओं की देखभाल करते समय दस्ताने या मुलायम कपड़े का इस्तेमाल करना चाहिए क्योंकि पसीने और हाथ की चिकनाई से उनमें दाग लग जाते हैं। साफ करने के लिए मुलायम कपड़े और ब्रशों का प्रयोग किया जाना चाहिए। इन वस्तुओं को रगड़ कर साफ नहीं करना चाहिए। भंडारण हेतु रखते समय लाख की वस्तुओं को मुलायम टिशू कागज में लपेटकर गद्दीदार मुलायम शेल्फों या बक्सों में रखना चाहिए।

पैपियर-माशे

पैपियर-माशे का निर्माण कागज को पानी में भिगोकर और अच्छी तरह से कूटकर किया जाता है। इसका प्रयोग भारत और फारस में बक्सों, पैनों, टोकरियों, पात्रों और अन्य सामग्रियों के निर्माण के लिए पारंपरिक रूप से किया जाता रहा है।

इन वस्तुओं को प्रायः अनेक रंगों से अलंकृत किया जाता था। कभी-कभी इनमें अनेक दृश्यों का अंकन भी किया जाता था और वार्निश की कोटिंग की जाती थी।

पैपियर-माशे की वस्तुओं की कागज की वस्तुओं की तरह देखभाल की जानी चाहिए। इनकी सुरक्षा हेतु निश्चित आपेक्षिक आर्द्रता होनी चाहिए। ये वस्तुएं उच्च आर्द्रता के प्रति बहुत संवेदनशील होती हैं। पैपियर-माशे कागज से निर्मित होता है, इसलिए यह वातावरण में व्याप्त नमी को सोखता है, जिसके कारण यह कवक की अभिवृद्धि में सहायक होता है।

पैपियर-माशे की सामग्रियों को कीटों से भी क्षति पहुंच सकती है। इनसे रक्षा के लिए अतिरिक्त सावधानी रखनी चाहिए ('कीट' तथा 'पांडुलिपियां तथा पुस्तकें' शीर्षक अध्याय, 3 और 13 का अवलोकन करें)।

पैपियर-माशे की वस्तुएं कमजोर तथा बहुत ही नाजुक होती हैं। प्रायः ये अंदर से पोली बनाई जाती हैं अथवा यह सतह की परतों में उसी प्रकार विद्यमान रहती है जिस प्रकार काष्ठ की बनी खोखली मूर्तियों में देखा जाता है। जरा सी भी असावधानी करने, जैसे उनके ऊपर भारी वस्तु रख देने से ये पिचक या टूट जाती हैं अथवा इनका स्वरूप बिगड़ जाता है। ऐसी वस्तुओं की टूट-फूट से रक्षा के लिए बहुत अधिक सावधानी की आवश्यकता है। आघात या झटका लगने से इनके धरातल में लगा पेंट निकल सकता है। पैपियर-माशे की प्रत्येक वस्तु को टिशू कागजों या पालिथीन की शीटों में लपेट कर गद्दीदार शैल्फों में अलग-अलग रखना चाहिए। इनकी धूल से रक्षा की जानी चाहिए और समय-समय पर मुलायम ब्रश से इन्हें साफ करना चाहिए।

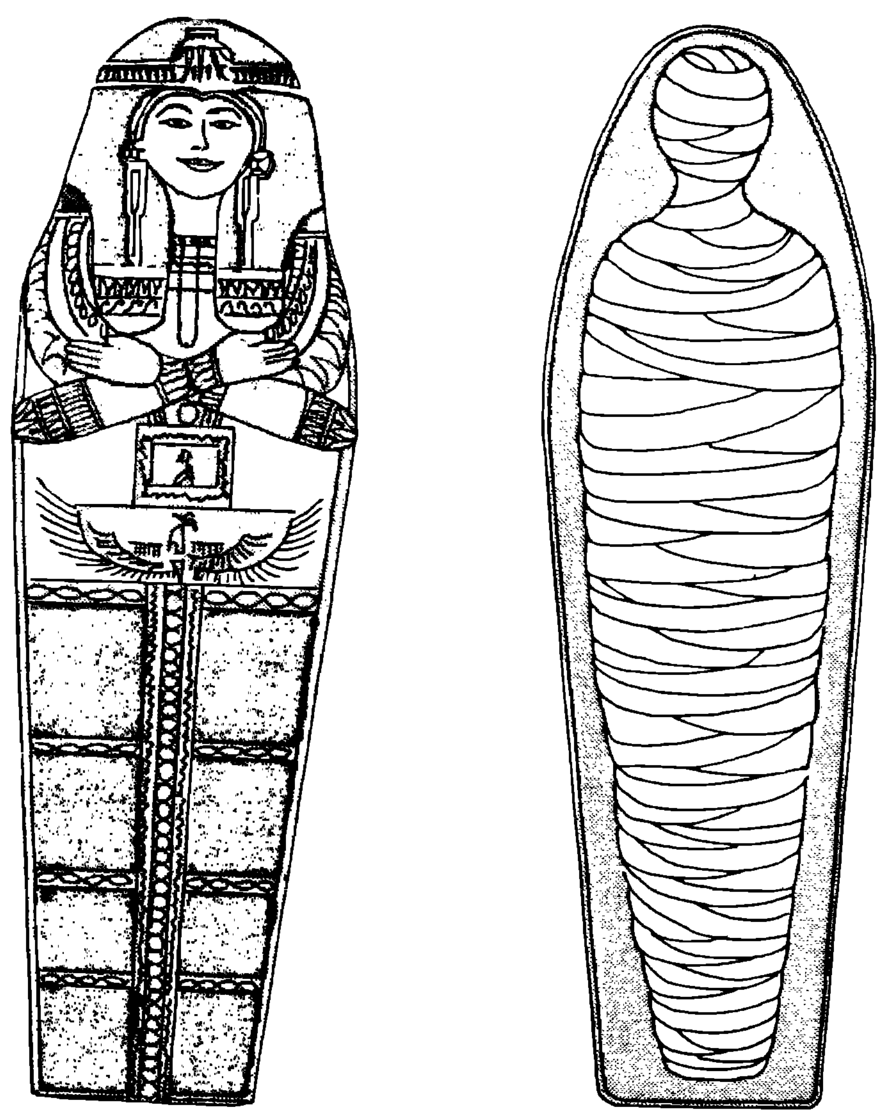
यदि इनमें लाख का प्रयोग हुआ है तो लाख की सुरक्षा संबंधी कार्यवाही भी साथ में की जानी चाहिए।

ममियां

भारत और विश्व के अनेक संग्रहालयों में ममियां (परिरक्षित शव) संग्रहित हैं, यद्यपि इनका प्रचलन ज्यादा आम नहीं है। मानव शरीर को ममी के रूप में सुरक्षित रखने की प्रथा का सूत्रपात प्राचीन मिस्र में हुआ। प्राचीन मिस्र में मृत व्यक्ति के शरीर को कब्र में दफनाने की प्रथा थी। चूंकि मिस्र की जलवायु ऊष्ण और शुष्क है, कब्रों की बालू, विशेष रूप से गहरी नहीं होती थी तो वह अत्यंत गर्म हो जाती थी। धीरे-धीरे मृत शरीर की आर्द्रता बालू के माध्यम से वाष्पित होकर बाहर निकल जाती थी। अंततः मृत शरीर पूरी तरह सूख कर रोगाणुरहित हो

जाता था और उसे शुष्क वातावरण में सदा के लिए सुरक्षित रखा जा सकता था। मिस्र की शुष्क जलवायु के कारण, मृत शरीर को सुरक्षित रखने के लिए कब्र में दबाना भर काफी था।

नवपाषाण (4800 ईसा पूर्व से पहले) तथा पूर्व राजवंशीय कालों (4800 से 3100 ईसा पूर्व) में मृत शरीर को जंतु-चर्म या लीनन वस्त्र में लपेट कर छिछली कब्रों में दफना दिया जाता था। पर धीरे-धीरे प्रारंभिक राजवंशीय काल में राजवंशीय कब्रें गहरी होती गयीं और उन्हें धूप में पकी ईंटों या लकड़ी की शहतीरों से परिवेष्ठित कर दिया जाता था। कभी-कभी इनके ऊपर कोई संरचना भी बना दी जाती थी। एक और परविर्तन आया। मृत शरीर पर पहले ढीले वस्त्र पहनाए जाते थे, पर आगे चलकर इनके स्थान पर लीनन वस्त्र को पट्टी की तरह दृढ़ता से लपेटा जाने लगा (चित्र 33)। अधिकतर मामलों में इन्हें बड़े परिष्कृत रूप से लपेटा जाता था। सर्वप्रथम प्रत्येक अंग को अलग-अलग कपड़ों से लपेटते थे और तब सारे शरीर को एक साथ वस्त्र से लपेट दिया जाता था।



चित्र 33. सजावटी ताबूत में ममी।

मृत शरीर को अनेक पट्टियों से लपेटने के बाद, इसे विशाल और गहरी

कब्रों में लकड़ी या पाषाण के ताबूतों में रखकर गाड़ दिया जाता था। इन ताबूतों को प्रायः काफी अलंकृत या चित्रित किया जाता था। फराहों और महत्वपूर्ण लोगों की कब्रें बड़ी पेचीदगियों से भरी हुई तथा अलंकृत बनाई जाती थीं जिनमें अनेक कक्ष बने होते थे। इन कक्षों में दिन-प्रतिदिन के प्रयोग में आने वाली वस्तुओं, जैसे अनाज इत्यादि को भंडारित किया जाता था।

गहरी कब्रों में शवों को गाड़ने से ऐसी समस्या उत्पन्न हुई जो पहले नहीं थी। छिछली कब्रों में शवों को रखने से, शवों के शरीर में व्याप्त जल वाष्पन से निकल जाता था पर शवों को गहरी कब्रों में रखने से उनका विघटन होने लगा। इस परिवर्तन से मृत शरीर के संरक्षण के लिए, कृत्रिम तरीकों को अपनाने की आवश्यकता पड़ी, ताकि शरीर सड़ने न पाये।

मानव शरीर में बहुत अधिक मात्रा में जल होता है, जो कि 75 प्रतिशत तक होता है। यदि इस जल को कृत्रिम या किसी अन्य तरीके से सुखा दिया जाए तो शरीर को अनिश्चित काल के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है। ममीकरण का यह मूल सिद्धांत है। शरीर में व्याप्त जल को निर्जलीकारक रसायनों जैसे केल्शियम हाइड्रोक्साइड, साधारण लवण और नैट्रोन की सहायता से बाहर निकाला जाता था। मिस्र में इस रीति का उस समय काफी प्रचलन था। उस समय मिस्र में यह प्रथा थी कि शरीर के वे अंग जिनका विघटन बड़ी तेजी से होता था यथा फेफड़े, जिगर, आंत्र और आमाशय इत्यादि को शरीर से बाहर निकाल दिया जाता था। इन अंगों को शरीर से काटकर निकाला जाता था और मिट्टी के बर्तन में रख देते थे। बाद में इन्हें पाषाण पेटिका में रख दिया जाता था। इस पेटिका को मकबरे के अंदर रखते थे। अब शरीर उन अंगों से रहित होते थे जो बहुत शीघ्रता से सड़ते-गलते थे। शरीर को नैट्रोन से सुखाने के बाद लीनन की पट्टियों से बांधकर मानव रूप दे देते थे। कभी-कभी इन्हें रंगा भी जाता था।

बाद के कालों में, कभी-कभी शरीर को मोल्टन रेजिन से संसाधित किया जाता था। इस रेजिन को शंकुधारी वृक्षों से निकाला जाता था जो मिस्र के निकटवर्ती प्रदेशों में पाए जाते थे। इन देशों से रेजिन का आयात किया जाता था जो बहुत ही मूल्यवान समझी जाती थी।

कुछ विद्वानों का यह विचार है कि शरीर में लेप करने के लिए प्राकृतिक बिटूमेन का भी प्रयोग किया जाता था। वास्तव में, 'ममी' शब्द की उत्पत्ति फारसी शब्द 'ममिया' शब्द से हुई जिसका तात्पर्य 'बिटूमेन' है। तथापि, अब यह सिद्ध हो चुका है कि शरीर में लेप करने के लिए बिटूमेन का प्रयोग नहीं किया जाता था।

ममियों का परिरक्षण

ऊपर दिए गए वर्णनों से यह स्पष्ट है कि ममियों के परिरक्षण के लिए शुष्क परिस्थितियां अधिक अनुकूल होती हैं। दूसरी ओर, बहुत अधिक शुष्क जलवायु लपेटे गए लीनन को भंगुर कर देती है। इसके लिए सबसे उपयुक्त 40 से 50 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता और 18 से 22 डिग्री सेल्सियस तापमान रहता है। ममी को कवक भी हानि पहुंचाता है। इसकी रोकथाम के लिए इथिल एल्कोहल में 0.5 प्रतिशत आर्थोफिनाइल फिनोल बहुत अधिक प्रभावशाली होता है। कभी-कभी लीनन की पट्टियां ममी से निकल जाती हैं और शरीर के कुछ भाग दिखाई देने लगते हैं। ऐसे खुले हुए भागों की नई लीनन की पट्टियों और मोल्टन रेजिन से मरम्मत कर देना चाहिए।

ममियों पर से धूल हटाने के लिए जल या जल पर निर्भर घोलों का कभी भी प्रयोग नहीं करना चाहिए। इसके लिए केवल जैविक विलायकों जैसे इथिल एल्कोहल, टेट्राक्लोरोएथिलीन, जाइलीन इत्यादि का प्रयोग करना चाहिए। ममी को शोकेस के अंदर प्रदर्शित किया जाना चाहिए और ढंककर रखना चाहिए। जब इसे स्टोर में रखा जाए तो इसे पालिथीन की चादर से ढंक देना चाहिए।

शब्दावली

1. **आवृत्ति** : प्रायः एक सैकेंड अथवा मात्रक समय में किसी तरंग गति या दोलन के आवर्तनों, दोलनों या कंपन की संख्या। यह संचरण वेग की मात्रा के बराबर है, जो तरंग-दैर्ध्य की मात्रा से भाग देकर प्राप्त की जाती है।
2. **आर्द्रताग्राही** : वह सामग्री जिसकी प्रकृति आर्द्रता को सोखने की होती है।
3. **ओसांक** : वह तापमान जिस पर वायु में जल-वाष्प की मात्रा अधिकतम हो जाती है तो वायु में व्याप्त पानी द्रवित होने लगता है, जैसे गर्म आर्द्र कमरे में रखे गए ठंडे गिलास के बाहर ओस जम जाती है।
4. **कैंडल** : कैंडल प्रदीप्ति का एक मात्रक है जिसे इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है–किसी कृष्णिका (ब्लैक बाडी) रेडियेटर के प्रति घन सेंटीमीटर क्षेत्र में 1/60 की ज्योति तीव्रता होती है जो प्लेटिनम के जम जाने के तापमान पर प्रचालित होती है। एक आदर्श कृष्णिका समस्त विकिरणों को पूर्णतया अवशोषित कर लेती है। इसका अर्थ है कि यदि इसे गर्म किया जाए तो यह समस्त आवृत्तियों को उत्सर्जित करती है।
5. **तरंग-दैर्ध्य** : किसी तरंग के समान कला की उत्तरोत्तर बिंदुओं की दूरी, उदाहरणार्थ, पानी की तरंगों के तरंग-दैर्ध्य का मापन शीर्ष से शीर्ष की दूरी को नापकर किया जाता हैं। प्रकाश का तरंग-दैर्ध्य छोटा होता है और उसे नैनोमीटर नाम से जाना जाता है।
6. **दरार, विदलन** : किसी चित्र की सतह, पेंट और धरातल के मध्य और आधार भाग के बीच की पार्थक्य रेखा।
7. **द्रवण** : वायु में व्याप्त कुछ जल-वाष्पों को शीतल किया जाता है तो ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है, जब जल-वाष्प तरल रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। वाष्प के तरल पदार्थ में परिवर्तित होने की इस प्रक्रिया को द्रवण कहा जाता है।
8. **नैनोमीटर** : मिलीमीटर के 1/1000 भाग को माइक्रोन और माइक्रोन के 1/1000 भाग को नैनोमीटर कहा जाता है।

9. **पी. एच. कागज :** पी. एच. अम्लता का मात्रक है। तटस्थ पदार्थों में पी. एच. 7 अम्लता, अम्लीय पदार्थों में 7 से कम तथा क्षारीय पदार्थों में 7 से अधिक मात्रा होती है। पी.एच. कागज पट्टियों के रूप में उपलब्ध है, जो विशेष पी. एच. पर विशेष रंग धारण कर लेता है।
10. **फुट कैंडल या मीटर कैंडल :** यह भी प्रदीप्ति का एक मात्रक है। इसका तात्पर्य है, जब एक कैंडल का प्रकाश अपने बिंदु-स्रोत से एक फुट या एक मीटर के धरातल की दूरी तक पड़ता है तो उसे क्रमशः फुट कैंडल या मीटर कैंडल कहते हैं।
11. **प्लैक्सिकांच :** यह एक एक्रिलिक शीट होती है। इसे परा-बैंगनी अवशोषण रसायनों को मिलाकर निर्मित किया जाता है, जैसे प्लैक्सिकांच यू. एफ-1। ये लगभग रंगहीन होते हैं। इसकी एक दूसरी किस्म भी होती है जिसे प्लैक्सिकांच यू. एफ-3 कहते हैं जो काफी उत्तम परा-बैंगनी अवशोषक होता है। इसका रंग थोड़ा पीलापन लिए हुए होता है।
12. **लाइटमीटर :** प्रदीप्ति की तीव्रता को नापने का एक यंत्र। इसका उद्देश्य स्रोत से प्रकाश की तीव्रता अथवा वस्तुओं के धरातल पर प्रकाश के परावर्तन को नापना है।
13. **लिटमस कागज :** विज्ञान संबंधी सामग्री के विक्रेताओं की दुकानों में लिटमस कागज स्ट्रिप्स में मिलते हैं। ये नीले या लाल रंग के होते हैं। इनसे वस्त्रों या कागजों में उपलब्ध अम्लता की मात्रा का पता लगाया जाता है जिसके लिए आसुत जल से इन्हें गीला करके सामग्री के ऊपर रख दिया जाता है। अगर उस सामग्री के अम्लता विद्यमान है तो लिटमस कागज का रंग लाल हो जाता है।
14. **शल्कन :** किसी चित्र की सतह पर से पेंट का निकलना जो लघु कणों या चिप्पड़ों के रूप में हो सकता है।
15. **संतृप्त वायु :** वायु की वह अवस्था, जब वह और अधिक जल-वाष्प ग्रहण करने में असमर्थ हो। तापमान के साथ वायु की संतृप्ति में भी परिवर्तन होता है। जितना अधिक तापमान होगा, उतनी ही अधिक जल-वाष्प की आवश्यकता उतनी ही मात्रा की वायु को संतृप्त करने में होगी।
16. **सर्वचीर पत्र, लुगदी कागज :** कागज का निर्माण विभिन्न प्रकार की कच्ची सामग्रियों जैसे, चिथड़े, रसायन से शोधित काष्ठ, बांस, धान के तिनकों तथा इस प्रकार की सामग्रियों से किया जा सकता है। चिथड़ों से बना हुआ कागज सबसे उत्तम माना जाता है क्योंकि दूसरे कागजों की तुलना में इसमें विनाश के कारकों को सहन करने की अधिक शक्ति होती है। अम्लता से यह शीघ्र प्रभावित नहीं होता।
17. **सिलिका जैल :** एक प्रकार की सिलिका जो अत्यंत सरंध्री संरचना होती है, और बहुत अधिक मात्रा में जल को अवशोषित करने की सामर्थ्य रखती है। यह आर्द्र वातावरण से अपने भार से 40 प्रतिशत अधिक आर्द्रता ग्रहण कर लेती है।

संदर्भ ग्रंथ

अग्रवाल, ओ. पी. (संपादित) : *कंजरवेशन इन दी ट्रोपिक्स,* इंटरनेशनल सेंटर फार कंजरवेशन, रोम, 1974

अग्रवाल, ओ. पी. तथा बक्शी, स्मिता जे. : कंजरवेशन एंड म्यूजियम आर्किटेक्चर इन साउथ एंड साउथ-ईस्ट एशिया, *म्यूजियम,* खंड 26, संख्या 3/4, 1974, पृष्ठ 269-273

अग्रवाल, ओ. पी. और सिन्हा, एस. एन. : *कंजरवेशन स्टेटस आफ मेनुस्क्रिप्ट्स, बुक्स, आरकाइवल एंड एलाइक मेटिरियल,* इन्टेक इंडियन कंजरवेशन इंस्टीट्यूट, लखनऊ, 1992

अग्रवाल, ओ. पी., धवन, शशि, और शाहीन, फोज़िया : *डिटिरिओरेशन आफ वूडन आब्जेक्ट्स बाई इनसेक्ट्स :* रिव्यू, इन्टेक इंडियन कंजरवेशन इंस्टीट्यूट, लखनऊ, 1991

अग्रवाल, ओ. पी. *कंजरवेश्न आफ मेनुस्क्रिप्टस एंड पेंटिंग्स आफ साउथ-ईस्ट एशिया,* बटरवर्थ्स, लंदन, 1984

अग्रवाल, उषा : *म्यूजियम्स इन इंडिया—ए ब्रीफ डाइरेक्टरी,* म्यूजियम एसोसिएशन आफ इंडिया, 1985

डी गूचेन, गेल : *क्लाइमेट इन म्यूजियम्स,* आईसीसीआरओएम, 1984

फैलर, आर. एल. : कंट्रोल आफ डिटिरिओरेटिंग इफेक्ट्स आफ लाइट अपोन म्यूजियम आब्जेक्ट्स, *म्यूजियम* (यूनेस्को), खंड 17, संख्या 2 (1964) पृष्ठ 57-58

हाल, ई. टी. : एन अल्ट्रा-वायलेट मानीटर फार म्यूजियम, *म्यूजियम* क्लाइमेटालोजी, दि इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट फार कंजरवेशन, लंदन, 1968, पृष्ठ 151-57

आई.सी.ओ.एम. कमेटी फार कंजरवेशन-लाइटिंग ग्रुप *आइ.सी.ओ.एम. न्यूज,* दिसंबर 1969, पृष्ठ 54

केन्जो, तोशिको : ए रेपिड रिस्पोन्स ह्यूमिडिटी बफर कम्पोज्ड आफ निक्का पैलेट्स एंड

जैपेनीज टिशूज, *स्टडीज इन कंजरवेशन,* 27 (1982) पृष्ठ 19-24

केन्जो, तोशिको : सरटेन डिटिरिओरेशन फेक्टर्स फार वर्क्स आफ आर्ट एंड सिंपल डिवाइसेज टू मानीटर दैम, *दी इंटरनेशनल जर्नल आन म्यूजियम मैनेजमेंट एंड क्यूरेटरशिप,* 5 (1986), पृष्ठ 295-300

नायर, एस.एम. : बायोडिटिरिओरेशन आफ म्यूजियम मेटिरियल्स इन ट्रोपिकल कंट्रीज, *कंजरवेशन इन ट्रोपिक्स,* संपादन : ओ. पी. अग्रवाल, इंटरनेशनल सेंटर फार कंजरवेशन, रोम, 1974, पृष्ठ 150-158

तंगली, इतेलो : बायोडिटिरिओरेशन काज्ड बाइ इंसेक्ट्स आन सम फर्नीचर एंड दी वुड स्ट्रक्चर आफ इटेलियन कल्चरल प्रापर्टी : प्रिवेंशन, कंट्रोल, स्ट्रग्ल, *बायोडिटिरिओरेशन आफ कल्चरल प्रापर्टी,* संपादन : ओ. पी. अग्रवाल तथा शशि धवन, मैक-मिलन एंड कंपनी, नयी दिल्ली, 1991

थाम्सन, गैरी : कैलीब्रेशन एंड यूज आफ एंड अल्ट्रावायलेट मानीटर, *म्यूजियम क्लाइमेटालोजी,* दी इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट फार कंजरवेशन, लंदन, 1968, पृष्ठ 159-182

थाम्सन, गैरी : क्लाईमेट एंड दी म्यूजियम इन ट्रापिक्स, *कंजरवेशन इन दी ट्रापिक्स,* इंटरनेशनल सेंटर फार कंजरवेशन, रोम, 1974, पृष्ठ 37-52

थाम्सन, गैरी : *दी म्यूजियम इन्वारमेंट,* बटरवर्थ्स, लंदन, 1978, पृष्ठ 19-21.

तोइशी, के. और केन्जो टी. : एलक्लाइन मेटिरियल लिबिरेटेड इंटू दी एटमोसफियर फ्राम न्यू कंक्रीट बिल्डिंग्स, *पेंट टेक्नोलोजी,* 1967, पृष्ठ 152-155

तोइशी, के. और केन्जो टी : सिंपल मेथड्स आफ मेजरिंग द एल्कलिनिटी आफ एयर इन न्यू कंक्रीट बिल्डिंग्स, *स्टडीज इन कंजरवेशन,* खंड 13, (1968) पृष्ठ 213-214

तोइशी, के. और केन्जो टी : सम आस्पेक्ट्स आफ दी कनजरवेशन आफ वर्क्स आफ आर्ट इन बिल्डिंग्स आफ न्यू कंक्रीट, *स्टडीज इन कनजरवेशन,* खंड 20, 1975, पृष्ठ 118-122